कर्मचक्र से सिद्धचक्र

– डॉ. संजीवकुमार गोधा

कर्मचक्र से सिद्धचक्र

(तत्त्वार्थसूत्र के छठे अध्याय पर आधारित प्रवचन)

लेखक

डॉ. संजीवकुमार गोधा, जयपुर

एम. ए.द्वय (जैन विद्या तुलनात्मक धर्म-दर्शन, इतिहास)

नेट, एम.फिल (जैन दर्शन), पी-एच. डी.

प्रकाशक

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर-302 015

फोन : 0141-2707458, 2705581

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

कर्मचक्र से सिद्धचक्र : **डॉ. संजीवकुमार गोधा**

प्रथम संस्करण : 3 हजार
(46वें आध्यात्मिक शिविर के अवसर पर)

मूल्य : **पैतीस रुपये**

मुद्रक :
देशना एन्टरप्राईजेज
जयपुर

प्रकाशकीय

जिनागम के चारों ही अनुयोगों के मर्मज्ञ, अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान डॉ. संजीवकुमार गोधा अब हमारे बीच नहीं रहे। भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व की जैनसमाज उनके प्रवचनों को बड़े आदर से सुनती थी, इतनी अल्पवय में वे सम्पूर्ण जैनसमाज के हृदय के हार बन गये थे। आज उनकी रिक्तता की पूर्ति होना असम्भव-सा लग रहा है; परंतु उनके द्वारा लिखित कृतियों के माध्यम से उनकी कमी की कुछ भरपाई करने का प्रयास कर रहे हैं। आपकी दो प्रकाशित कृति कालचक्र के पांच संस्करण विभिन्न भाषाओं में एवं समुद्घात के दो संस्करण हिंदी भाषा में प्रकाशित हो चुके हैं। अब उनकी यह नवीनतम कृति **'कर्मचक्र से सिद्धचक्र'** आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

यह कृति तत्त्वार्थसूत्र के छठे अध्याय पर आधारित उनके प्रवचनों का व्यवस्थित संकलन है; जिसमें यह बतलाया गया है कि जीव भेदविज्ञान के द्वारा कर्मोदयजन्य अवस्था से भिन्नता का अनुभव करता हुआ अर्थात् कर्मचक्र से निकलकर मोक्षमार्ग और मोक्ष को अर्थात् सिद्धचक्र रूप अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

इस **कर्मचक्र से सिद्धचक्र** के अतिरिक्त कुछ अन्य पुस्तकों का प्रणयन भी आपके द्वारा किया गया है, जिनका प्रकाशन यथाशीघ्र किया जाएगा।

इस कृति के प्रकाशन का दायित्व सदा की भांति विभाग के प्रभारी डॉ. अखिल बंसल ने बखूबी सम्भाला है तथा इस कृति को परिष्कृत करने में पण्डित अनिल शास्त्री, जयपुर का व टंकण में पण्डित अखिल शास्त्री, मण्डीदीप का सहयोग भी सराहनीय रहा है। अतः तीनों का आभार।

इस कृति के माध्यम से कर्मचक्र से मुक्त होकर सिद्धचक्र में स्थापित होने की विधि को बड़ी ही सरलता से समझाने का प्रयास किया गया है। इस कृति का अध्ययन कर सभी विज्ञजन अपना आत्मकल्याण करें यही भावना है।

– विपिन जैन 'शास्त्री' मुम्बई
प्रकाशन मंत्री

अंतर्भावना

इस दुषम पंचम काल में जिनदेव का जब हो विरह।
तब मातसम उपकार करते शास्त्र ही आधार हैं।।

श्री सजीवकुमारजी गोधा सरल शैली में प्रवचन करने वाले जन-जन के प्रिय विद्वान हैं।

बाल्यकाल से ही उनकी धर्म में रुचि रही है। विवाह उपरांत भी वे घर-गृहस्थी के विकल्पों में अधिक नहीं उलझे और निरंतर तत्त्वप्रचार ही करते रहे। जिसकी मैं साक्षी रही हूँ।

उनकी भावना जिनधर्म के प्रचार-प्रसार की ही रही हैं। जिस हेतु उन्होंने अनेक ग्रंथों पर प्रवचन तथा लेखन कार्य किया है। प्रवचनों के क्रम में उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र के छठे अध्याय पर बहुत ही मार्मिक प्रवचन किए हैं जो कि जन-जन को मोक्षमार्ग में लगाने वाले हैं; ये प्रवचन सभी को अवश्य सुनना चाहिए।

प्रस्तुत कृति कर्मचक्र से सिद्धचक्र प्रवचनों को आधार बनाकर आपके समक्ष प्रस्तुत की गई है।

सभी इसका लाभ लेते हुए कर्मचक्र को तोड़कर सिद्धचक्र में स्थापित हों इसी पवित्र भावना के साथ आपके कर-कमलों में यह कृति समर्पित है।

– संस्कृति गोधा

कर्मचक्र से सिद्धचक्र

यहाँ हम तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ के आधार से चर्चा कर रहे हैं। यह आचार्य उमास्वामी द्वारा लगभग 2000 वर्ष पहले लिखा गया एक ऐसा अद्‍भुत ग्रन्थ है जिसमें आचार्यदेव ने '**गागर में सागर**' भर दिया है।

आपके अनुसार कोई ग्रंथ कितना छोटा हो सकता है ? छोटे से छोटे ग्रंथ के बारे में जब हम सोचते हैं, तो हमें लगता है कि छोटा ग्रंथ भी कम-से-कम 100-200 पेज का तो होगा ही अथवा 200-400 पेज का तो होगा ही; लेकिन हम ऐसे ग्रंथ की चर्चा करें जिसमें पूरा का पूरा जैन दर्शन गर्भित हो जाए।

तो आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जिस तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ की हम चर्चा कर रहे हैं। यह ग्रंथ मुश्किल से 5-7 पेज का है। कोई 500-700 पेज का नहीं अर्थात् 5-7 पेज में आचार्यदेव ने इतना सबकुछ भर दिया है कि हम जो चाहें वह हमें इस ग्रंथ से प्राप्त हो जाए।

इस ग्रन्थ में ज्ञान, कर्म, गुणस्थान, व्रत, त्याग, नियम और पाँच शरीरों आदि की चर्चा है। इसमें स्वर्ग-नरक-मध्य लोक जैसे अनगिनत विषय हैं। संवर-निर्जरा, सात तत्त्व, छह द्रव्य, पंचास्तिकाय की चर्चा है। जीव, पुद्गल आदि सभी द्रव्यों की चर्चा है। हम जो शब्द सोचेंगे उसकी चर्चा हमें इस ग्रंथ में मिल जाएगी। जैन दर्शन का कोई भी विषय उठा कर देखें; इसमें स्याद्वाद, अनेकांत, नय, प्रमाण सबकुछ है।

पाँच-सात पृष्ठों में सारी चर्चा कर दी है। इसमें काल की चर्चा, गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषह जय, चारित्र, आठ प्रकार के कर्म, कर्म की प्रकृतियाँ, विविध प्रकार के बंध सबकुछ गर्भित है यदि हमें जैन दर्शन को गहराई से पढ़ना और समझना हो तो तत्वार्थसूत्र का गहराई से अभ्यास करना चाहिए।

तत्वार्थसूत्र अर्थात् मोक्षशास्त्र। मोक्षशास्त्र और तत्वार्थसूत्र एक ही बात है। ये दोनों अलग-अलग नहीं हैं, एक ही हैं। इस शास्त्र का जिसने गहराई से अध्ययन कर लिया समझ लीजिये, उसने सबकुछ पढ़ लिया। उसे पढ़ने के लिए अब कुछ बाकी नहीं रहा। इस तत्वार्थसूत्र पर 2000 वर्ष में सैकड़ों टीकाएँ लिखी गईं हैं, व्याख्याएँ लिखी गईं हैं। जितना ज्यादा इस तत्त्वार्थ सूत्र पर लिखा गया है, उतना ज्यादा किसी भी अन्य जैन ग्रंथ पर नहीं लिखा गया है।

शैली :- जैन परंपरा के सभी सम्प्रदाय चाहे वह दिगम्बर हो, श्वेताम्बर हो, स्थानकवासी हो, मूर्तिपूजक हो, तेरापंथ सम्प्रदाय हो, जो भी जैनियों के के सम्प्रदाय हैं उन सबमें एक स्वर से तत्त्वार्थसूत्र को मान्यता प्राप्त है। तत्त्वार्थसूत्र की महिमा सभी जानते हैं। तत्वार्थ सूत्र में क्या है? मोक्ष का मार्ग है। इसमें सात तत्त्वों का वर्णन है। जीव-अजीव, आस्रव-बंध, संवर-निर्जरा और मोक्ष। इस तत्त्वार्थसूत्र में छोटे-छोटे सूत्र हैं जो संस्कृतभाषा में लिखे गए हैं। पहले सूत्र से लेकर आखिरी सूत्र तक इसे प्रश्नोत्तर शैली में लिखा गया है। एक प्रश्न शिष्य ने किया और उसे सूत्र के रूप में लिख दिया। फिर नया प्रश्न खड़ा हुआ उसके उत्तर में दूसरा सूत्र लिख दिया। फिर प्रश्न उत्पन्न हुआ उसके उत्तर में फिर तीसरा सूत्र लिख दिया। इस तरह से इस तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ की रचना हुई है। इसकी रचना संबंधी एक घटना प्रचलित है-

घटना :– 2000 वर्ष पुरानी यह घटना है। एक द्वयाक नामक ब्राह्मण के यहाँ उमास्वामी मुनिराज आहार हेतु पधारे। उस द्वयाक नामक गृहस्थ का एक नियम था कि वह अपने घर की दीवार पर प्रतिदिन सूक्ति–श्लोक लिखा करता था। एक शिक्षाप्रद सूक्ति दीवार पर लिखी हुई थी – "**दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः**"। उस समय कच्ची दीवार होती थी और हाथ से ही उस दीवार पर लिखा जाता था। जब मुनिराज पधारे और उन्होंने इस सूक्ति वाक्य को पढ़ा तो उन्होंने इसके पूर्व **सम्यक्** शब्द जोड़ दिया। इस प्रकार उन्होंने सम्यक् दर्शन–ज्ञान–चारित्र की एकता को मोक्षमार्ग लिख दिया। मुनिराज तो आहार लेकर चले गये। जब उस गृहस्थ को इस बात का पता लगा, तो उसने देखा कि इसके आगे किसी ने सम्यक् शब्द जोड़ दिया है।

जिन्होंने भी यह शब्द जोड़ा है, वह तो बहुत ज्ञानी मालूम होते हैं ऐसा विचार करते हुए वह तलाश करते–करते उन मुनिराज के पास जंगल में पहुँचा और उनसे एक–एक प्रश्न करता गया। मोक्षमार्ग क्या है? तो इसके उत्तर में तत्त्वार्थसूत्र का पहला सूत्र "**सम्यग्दर्शनज्ञान–चारित्राणि: मोक्षमार्गः**" लिखा गया। यहाँ से तत्त्वार्थसूत्र का लेखन प्रारंभ हो गया और फिर शिष्य ने प्रश्न किया कि यह सम्यग्दर्शन क्या है? तो जवाब मिला "**तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं**" फिर प्रश्न किया कि सम्यग्दर्शन कैसे होता है? तो जवाब मिला "**तन्निसर्गादधिगमाद्वा**" निसर्गज और अधिगमज होता है। फिर प्रश्न किया कि आपने तत्त्व की बात की वे तत्त्व कौन–से हैं? तब आचार्य बोले "**जीवाजीवास्रवबंध संवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्**" फिर प्रश्न किया कि इनको जानेंगे कैसे? तब जवाब मिला "**नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः**" फिर प्रश्न किया कि जानने के कोई उपाय हैं क्या? तब सूत्र के रूप में उत्तर मिला –

‘‘**प्रमाणनयैरधिगमः**’’ फिर प्रश्न किया कि और भी कोई उपाय हैं क्या? तो उत्तर मिला ‘‘**निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरण–स्थितिविधानतः**

फिर प्रश्न हुआ कि ज्ञान कितने होते है? उत्तर मिला – ‘‘**मति–श्रुतावधि मनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम्**’’ ये पांच ज्ञान हैं। फिर प्रश्न हुआ कि इसमें सच्चे कौन–से हैं? तो उत्तर मिला ‘‘**तत्प्रमाणे**’’ पाँचों सच्चे हैं। फिर प्रश्न किया कि इनमें से परोक्ष ज्ञान कौन–कौनसे हैं। तो उत्तर मिला ‘‘**आद्येःपरोक्षम्**’’ अर्थात् प्रारंभ के दो परोक्ष हैं। फिर प्रश्न किया कि बाकी के बचे हुए कौन से ज्ञान है?– ‘**प्रत्यक्षमन्यत्**’। इसप्रकार शिष्य एक–एक प्रश्न करता गया और आचार्यदेव उसके उत्तर स्वरूप एक–एक सूत्र की रचना करते गए और इसप्रकार इस तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ का प्रादुर्भाव हुआ।

प्रकरण के अनुसार कर्म का अर्थ

कुछ लोग कुछ न कुछ क्रिया करते रहना इसे कर्म समझते हैं। आप लोगों ने गीता में सुना होगा– **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन** अर्थात् कर्म किए जाओ फल की इच्छा मत करो। कर्म अर्थात् कुछ न कुछ करना। कर्म करना हमारे हाथ में है, फल जो होगा, सो होगा, ऐसा हम सभी ने सुन रखा है। हम सबने बचपन से ही ऐसा सुना है और हमारी मान्यता भी ऐसी ही है कि हम जो भी कार्य करते हैं, मेहनत करते हैं, भाग–दौड़ करते हैं। दुनिया में इसे ही कर्म कहा जाता है, लेकिन हम जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में जिस कर्म की चर्चा कर रहे हैं वे कर्म धूल, मिट्टी के कण की तरह हैं। सड़क पर जैसे मिट्टी, धूल के कण पड़े रहते हैं; इन कर्मों का कुछ वैसा ही स्वरूप होता है। वे कर्म आत्मा से आकर चिपकते हैं। वे धूल के समान कण जो परमाणु के रूप में होते हैं, वे भावों का निमित्त

पाकर इस जीव के साथ या आत्मा के साथ चिपक जाते हैं। उन्हें कर्म नाम से सम्बोधित किया जाता है।

तीन प्रकार के कर्म

द्रव्य कर्म, भाव कर्म और नोकर्म। ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्म तो द्रव्यकर्म के भेद हैं तथा मोह-राग-द्वेष आदि भावकर्म है और ज्ञानावरणादि कर्मों के उदय में जो संयोग प्राप्त होते हैं, उन्हें नोकर्म कहते हैं। घर-बार, महल-मकान, रोटी-कपड़ा, खाने-पीने की चीजें, जो भी हमसे संबंधित हैं, वे सब नोकर्म हैं। नोकर्म अर्थात् संयोग। जगत के जितने भी पदार्थ हैं, जो हमारे कर्म के उदय से हमें प्राप्त हुए हैं, वे सब नोकर्म हैं। मित्र भी अपने नोकर्म हैं और शत्रु भी अपने नोकर्म हैं। अपने सगे-संबंधी भी नोकर्म हैं। हमें अनुकूल लगने वाले तथा प्रतिकूल लगने वाले समस्त पदार्थ नोकर्म हैं। वे हमें रूचते हों या नहीं रूचते हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वे सब जो हमें हमारे कर्म के उदय से प्राप्त हुए; सब नोकर्म हैं।

द्रव्य कर्म के उदय से नोकर्म मिलते हैं। इन नोकर्म के मिलने में हमारे वर्तमान का कुछ भी पुरुषार्थ कार्य नहीं करता। ये नोकर्म भूतकाल में हमारे परिणामों द्वारा बंधे हुए द्रव्यकर्म के उदय पर निर्भर करते हैं। जैसा भूतकाल में किया था, वैसे ही संयोग मिलते हैं। तात्पर्य यह है कि जो भी हमारी वर्तमान की परिस्थितियाँ हैं, वे सभी नोकर्म हैं।

वर्तमान देखकर भूत और भविष्य काल का अनुमान

किसी बहुत बड़े विद्वान् ने कहा है कि हम आपके वर्तमान को देखकर यह कह सकते हैं कि आपका भूतकाल कैसा था और आपके वर्तमान को देखकर यह भी निर्धारित किया जा सकता है कि आपका

भविष्य कैसा होगा। दोनों ही बातें इसमें सम्मिलित हो गई हैं। आपका वर्तमान, भूतकाल का प्रतिफल है। भूतकाल में हमने जो कुछ भी किया है उन सबका प्रतिफल ही वर्तमान में दिखाई दे रहा है।

हम सब ने जैनकुल में जन्म लिया और जिनवाणी सुनने का अवसर मिला। हमारे महाभाग्य से हमें सच्चा जैनधर्म मिल गया। इसका मतलब है कि हमारा भूतकाल तो बहुत अच्छा रहा, क्योंकि यदि भूतकाल अच्छा नहीं होता तो वर्तमान में इतने अच्छे संयोग हमें प्राप्त नहीं होते।

अब वर्तमान के क्रिया-कलापों को देखकर, भावों अथवा परिणामों को देखकर इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि हमारा भविष्य कैसा होगा? संयोगों का मिलना तो हमारे पूर्व कर्म के उदय के अनुसार था; पर इनके मिलने पर हमारा चित्त इनमें लगता है या नहीं, यह इस बात का सूचक है कि हमारा भविष्य कैसा होगा।

वर्तमान परिणाम वर्तमान को तो प्रभावित करते ही हैं, वर्तमान परिणाम भूतकाल को भी प्रभावित करते हैं और इनसे भविष्य भी प्रभावित होता है। इस प्रकार वर्तमान परिणामों का तीनों कालों पर प्रभाव पड़ता है।

वर्तमान काल पर कैसे?

हमारे वर्तमान भाव जैसे होंगे हम वैसा ही वर्तमान में अनुभव करेंगे। जिसके जैसे भाव होते हैं, उसका वर्तमान में अनुभव भी वैसा ही होता है। एक व्यक्ति के चित्त में यदि गुस्से का भाव आ रहा है तो वह वर्तमान में भी दु:खी रहता है। यदि वर्तमान अनुकूलताओं में अच्छा भाव है, तो वर्तमान में भी प्रसन्न रहता है। चेहरे की प्रसन्नता चित्त की प्रसन्नता को दिखाती है। अत: वर्तमान में जैसे भाव होते हैं, उनका फल भी वैसा ही भोगते हैं।

भविष्य काल पर कैसे?

वर्तमान से भविष्य भी प्रभावित होता है; क्योंकि वर्तमान में जो परिणाम हो रहे हैं, वे भावकर्म कहलाते हैं। इस भावकर्म से द्रव्यकर्म बंधता है, जिसका फल नोकर्म के रूप में मिलेगा। ये नोकर्म भविष्य है और जो नोकर्म वर्तमान में दिख रहे हैं, वह भूतकाल का फल है तथा भविष्य में जो नोकर्म मिलेंगे, वे वर्तमान भावकर्म के फल में मिलेंगे। इसका आशय यह है कि जैसा बीज बोएंगे वैसा फल मिलेगा। **अभी के अच्छे भाव से अच्छे भविष्य का निर्माण होगा।**

मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है। हमारा भविष्य हमारे ही हाथ में है। यदि हम चाहें तो अपने परिणामों के स्टेरिंग को घुमाकर नरक की तरफ ले जायें अथवा मनुष्य या देव गति की तरफ ले जायें। यहाँ तक कि परिणाम को हम इतना अंदर की तरफ घुमायें कि हमारी गाड़ी मोक्ष की तरफ चली जाये। यह हमारे ऊपर ही निर्भर करता है, हमारे भावों पर ही निर्भर करता है। दुनिया में किसी की इतनी ताकत नहीं है कि वह हमें नरक में ले जाए। अथवा किसी की ऐसी सामर्थ्य नहीं है कि वह हमें मोक्ष की ओर ले जाये। कोई किसी को कहीं नहीं ले जा सकता है। सब-कुछ अपने ही हाथ में है, जैसे भाव होंगे वैसा भविष्य होगा।

भूत काल पर कैसे?

वर्तमान से भूतकाल कैसे बदलेगा? ये कैसे हो जायेगा कि हमारा भूतकाल बदल जाये? वर्तमान में हमारे जो भाव हो रहे हैं, उनसे वर्तमान प्रभावित हो रहा है - यह तो समझ में आता है तथा इस वर्तमान पर ही भविष्य निर्भर करता है - यह भी समझ में आ गया। जैसे- बच्चा यदि वर्तमान में पढ़ाई कर रहा है तो इसका अर्थ है कि उसका भविष्य उज्ज्वल

होगा, परीक्षा में अच्छा परिणाम आयेगा। उसका परिणाम कैसा होगा, यह उसके वर्तमान से दिख रहा है। इसप्रकार हमारे वर्तमान के प्रयास से वर्तमान व भविष्य तो प्रभावित होते दिखाई दे रहे हैं लेकिन भूतकाल कैसे बदल जायेगा? भूतकाल तो बीत चुका है।

हम अपने भावों की सामर्थ्य से भूतकाल को भी बदल सकते हैं – ये हमारे वर्तमान की शक्ति है। भूतकाल को बदलना भी हमारे हाथों में ही है, लेकिन यह कैसे सम्भव है? भूतकाल में हमारे द्वारा जो पाप किये गये हैं। जो कर्म किये गये हैं, आज से 10-20-50 साल पहले अथवा पिछले जन्मों में हमने जो पाप किये हैं, उनका फल मिलने के पूर्व यदि हमारे वर्तमान भाव बदलते हैं तो भूत में बंधे हुए कर्मों में उत्कर्षण, संक्रमण अथवा अपकर्षण हो सकता है। पहले का बंधा हुआ पापकर्म पुण्य में बदल सकता है। जो भूतकाल में हमारे द्वारा खोटा काम किया गया था, जो कर्म वर्षों से बंधे हुए थे। वे बंधे हुए कर्म भी बदल सकते हैं, परिवर्तित हो सकते हैं। अर्थात् जो पाप किया था, उसका भी भविष्य में परिवर्तन होने पर अच्छा फल मिल सकता है अथवा जो पुण्य किया था, उसका भी भविष्य में बदलकर पाप के उदय रूप फल मिल सकता है। इसतरह दोनों तरफ से परिवर्तन हमारे वर्तमान के परिणामों पर निर्भर करता है।

जैसे किसी पंचकल्याणक महोत्सव के आयोजन में हमने दो लाख रुपए के दान की घोषणा की। अब इसमें हम विचार करें कि हमें पुण्य बंधा होगा या नहीं? यह पुण्य-पाप का बंधन इस बात पर निर्भर करता है कि हमारे भाव कैसे हैं। पैसों से कर्म बंधन में कोई अंतर नहीं पड़ता। अंतर तो हमारे दान संबंधी भाव पर निर्भर करता है। यदि दान देकर हमें ऐसा भाव आता है कि ज्यादा ही दे दिये, 1.50 लाख में ही काम

चल जाता। मैंने व्यर्थ में ही दो लाख बोल दिये। मेरे बाद जितने भी लोगों ने बोला उन्होंने एक लाख ग्यारह हजार दिए। मैंने तो सीधे ही दो लाख बोल दिये, ज्यादा ही दे दिये। अब इसके भाव बदल गये और जब भाव बदलते हैं तो कर्मों में भी परिवर्तन होता है। दो साल पहले या दो महीने पहले जो भी हमने दान की घोषणा की थी, अब यदि भाव बदल गये तो जो पुण्य का बंधन हुआ था, वह पुण्य कर्म संक्रमित हो जायेगा अर्थात् वह पुण्यकर्म से पापकर्म में परिवर्तित हो जाएगा, अपकर्षण अथवा उत्कर्षण हो जायेगा। अपकर्षण अर्थात् कर्मोदय की स्थिति का घट जाना, उत्कर्षण अर्थात् कर्मोदय की स्थिति का बढ़ जाना। इसप्रकार भूतकाल में बंधे हुए कर्मो का वर्तमान परिणामों से संक्रमण, उत्कर्षण, अपकर्षण संभव होने से यह बात सिद्ध हो गई कि वर्तमान से भूतकाल भी प्रभावित होता है। तात्पर्य यह है कि हमें सदा ही अपने भावों को अच्छा रखना चाहिए, हमारे परिणाम उज्ज्वल होने चाहिए।

हम कोई कार्य कर पायें या नहीं कर पायें, हम मंदिर जा पाये या नहीं जा पायें। हम प्रक्षाल कर पाये या नहीं कर पायें। हम पूजन में बैठ पायें या नहीं बैठ पायें, हम प्रवचन के लिये पूरा समय दे पायें या नहीं दे पायें, लेकिन मन में निरंतर यह भावना आनी चाहिए कि मुझे इन धर्म की बातों को सुनना है। मुझे सुनना चाहिए था। मैं सुन नहीं पाया, मैं जा नहीं पाया। मेरी भावना बहुत है। हमें तो हमारी भावना का ही फल मिलेगा। '**भावना भव नाशिनी**'। भावना से तो भव भी नष्ट हो जाते हैं।

सुख-दु:ख/भाग्य किसके कंट्रोल में?

जैसे भाव होते है वैसे कर्म बंधते हैं। हमारे भाव बदलेंगे तो पूर्व में बंधे कर्म भी बदलेंगे और कर्म बदलेंगे तो हमारा भाग्य भी बदलेगा और जब भाग्य बदलेगा तो हमारा जीवन भी बदल जायेगा। यह सम्पूर्ण

परिवर्तन हमारे भावों पर ही निर्भर करता है; अतः पूर्णतः नियंत्रण (कंट्रोलिंग पॉवर) की शक्ति हमारे हाथों में ही है। आज तक हमने अपनी कंट्रोलिंग पॉवर किसी और को दे रखी थी। किसी ने गाली दी तो क्रोध आ गया और दो लोगों ने प्रशंसा कर दी तो मजा आ गया। तात्पर्य यह है कि मेरा प्रसन्न होना और दुःखी होन इसका रिमोट किसी दूसरे के हाथ में था। दूसरा व्यक्ति मेरी प्रशंसा करे तो मैं खुश हो जाऊँगा। दूसरा व्यक्ति मेरी निंदा करे तो मैं दुःखी हो जाऊँगा अर्थात् हमने अपना कंट्रोल किसी दूसरे के हाथ में दे रखा है। एक प्रवचन किया और चार लोगों ने प्रशंसा कर दी तो खुश हो गये और दो लोगों ने कह दिया कि पण्डितजी आज तो मज़ा नहीं आया। बस, इतना सुनते ही चेहरा उतर जाता है। जरा, विचार करें, क्या अपना सुख-दुःख किसी दूसरे व्यक्ति के शब्दों से आएगा। क्या हमारा मज़ा किसी दूसरे व्यक्ति पर निर्भर करता है ?

यदि कोई कहे कि आपकी ड्रेस अच्छी लग रही है, कहाँ से खरीदी है तो लगता है कि हमारी प्रशंसा हो रही है, हमें अच्छा लगता है। इसका मतलब हमारा प्रसन्न रहना या दुःखी होना दूसरों पर निर्भर हो गया। सारा कंट्रोल हमने बच्चों को, पत्नी को, परिवार को, दोस्तों को, समाज वालों को दे रखा है। जैसा वे हमारे बारे में बोलते हैं, हम वैसा ही अनुभव करने लगते हैं।

हमें हो क्या गया है, हमें स्ट्रांग बनना है। अपना कंट्रोल किसी दूसरे के हाथ में नहीं देना है। हमारा कंट्रोल हमारे पास में ही होना चाहिये। जिनका कंट्रोल दूसरों के हाथों में होता है, उन्हें दुःखी होने से कोई नहीं बचा सकता और जिनका कंट्रोल अपने हाथ में होता है, उन्हें कोई दुःखी नहीं कर सकता।

परिणामों का चमत्कार

भाव बदलते ही कर्म बदल जाते हैं। भूतकाल बदल जाता है, भविष्य बदल जाता है। बैठे-बैठे ही कर्म बदल जाते हैं, हमें पता ही नहीं लगता है कि अंदर में क्या-क्या परिवर्तन हो रहे हैं। जो अनंतानंत कर्म परमाणु आत्मप्रदेशों के साथ चिपके हुए हैं, वे स्वत: परिवर्तित हो जाते हैं, स्वत: बदल जाते हैं। पूर्व में किये गये पापकर्म पुण्य में बदल जाते हैं, पुण्यकर्म पाप में बदल जाते हैं।

लोगों को तो जब कुछ चमत्कार दिखे तब महिमा आती है। लोग ऐसा कहते हैं कि हम तो रोज मंदिर जाते हैं, हमें तो कोई चमत्कार ही नहीं दिखता है। यह दुनिया थोड़ा-सा अतिशय देख ले तो लाइन लग जाती है, बैठने की जगह मिलना मुश्किल हो जाता है। लेकिन भाई! असली अतिशय तो हमारे परिणामों से निरन्तर हो ही रहा है, जिसकी हमें खबर ही नहीं है। पहले तो बड़ा संकट आये और फिर संकट मिटे तो हमें चमत्कार दिखता है। डॉक्टर के यहाँ जाएँ और डॉक्टर हमें कहे कि आपको कैंसर है तो भगवान याद आने लगते हैं। डॉक्टर ने कैंसर की बीमारी बता दी तो हमें भगवान याद आते हैं और फिर मंदिर आये, दर्शन किए, भगवान की भक्ति की, थोडा-सा जाप-अनुष्ठान आदि किया और यदि दूसरे ही दिन डॉक्टर वापस जाँच कर कहे कि कैंसर नहीं है तो सोचता है कि मुझे भक्ति आदि का फल मिल गया, यह सब पूजा-पाठ आदि का ही चमत्कार है। कल तो कैंसर था और आज मैंने उनके दर्शन किये, उस मंत्र का जाप किया और कैंसर गायब, यह सब इसका ही चमत्कार है।

बस, अज्ञानी जीव इसतरह की बातों में ही चमत्कार समझता है। पहले कुछ अनिष्ट होता हुआ दिख रहा हो, फिर अचानक अनिष्ट होने से

रुक जाये तो लगता है कि चमत्कार हो गया। हम कह रहे हैं अंदर में कैंसर के परमाणु पनप रहे थे, आपको पता नहीं था और वे इस तत्त्वज्ञान को पढ़ने, सुनने और समझने से अंदर के अंदर ही साफ हो गये। क्या वह चमत्कार नहीं है। आज आप स्वस्थ बैठे हैं तो इस स्वस्थ अवस्था के पीछे क्या राज है? आपको पता है कि भेद-विज्ञान व तत्त्वविचार से अंदर पनपने वाली बीमारियाँ अंदर ही अंदर साफ हो जाती हैं। बड़े-बड़े संकट आने से पहले ही ऊपर के ऊपर दूर हो जाते हैं। हमको तो पता भी नहीं लगता, यदि कोई निमित्तज्ञानी बतायें तो पता लगे।

जैसे आप यहाँ बैठे हैं और आपकी आँखें बंद हैं। आँखें बंद करके आप कुछ सुन रहे हैं और उधर से कोई सर्प आ गया और फन लगाकर आपके पास बैठ गया, जबकि आपको तो इस बात की खबर ही नहीं है। इतने में ही कोई दूसरा व्यक्ति आपके पास आया और देखा कि आपके पास सर्प फन लगाकर बैठा है और आपको डसने वाला है। उस व्यक्ति ने कुछ उपाय करके वहाँ से सर्प को भगा दिया। अब आपको तो इस बात की खबर नहीं है कि संकट आपके ऊपर आया था और चला भी गया। इसीप्रकार हमारे वर्तमान निर्मल भावों से अंदर में अपने आप चमत्कार होते रहते हैं। इसप्रकार कर्मों में उत्कर्षण, अपकर्षण व संक्रमण होता रहता है अर्थात् कर्म बढ़ जाते हैं, घट जाते हैं और बदल भी जाते हैं।

इस बात को हम एक उदाहरण से समझते हैं। जैसे किसी गाँव में एक सेठ रहता था। सेठ के यहाँ चंदन की लकड़ियों का व्यवसाय होता था। कुछ समय बाद सेठ की मृत्यु हो गई तो उसका बेटा व्यापार संभालने लगा। उसने गाँव में ही अपने व्यापार को बहुत फैला लिया। चंदन की लकड़ियों का व्यापार इतना फैल गया कि दुनिया उसे चंदन सेठ के नाम से ही बुलाने लगी। एक दिन संयोग से गाँव में वहाँ के राजा

की सवारी निकली। तब जिस रास्ते से राजा की सवारी निकल रही थी, वहाँ दोनों ओर लोग राजा के दर्शनों के लिये खड़े हो गये। सड़क के दोनों तरफ भीड़ लगी हुई थी और बीच में से राजा की सवारी निकल रही है। चंदन सेठ ने अपने घर की बालकनी में ही खड़े होकर राजा को नमस्कार किया। उसने राजा को देखा और राजा ने उसको देखा। तभी सेठ के मन में एक भाव आया कि यदि अभी गाँव में ही राजा की मृत्यु हो जाये तो राजा को जलाने के लिए चंदन की लकड़ियों का पुराना स्टॉक अच्छे दामों में बिक जायेगा।

भाव तो किसी के मन में कुछ भी आ सकते हैं। यह तो विचार है, चिंतन है, चिंतन को कौन रोक सकता है? लेकिन इसका फल क्या निकला? क्या हुआ होगा इस विचार के बदले? यहाँ सेठ के मन में जैसा भाव आया वैसा ही भाव राजा के मन में भी आया और उसने वहीं मंत्री को आदेश दिया कि इस सेठ को कल राजदरबार में बुलाकर फाँसी पर चढ़ा देना। राजा ने सोचा कि इस सेठ को बहुत घमंड हो गया है, यह अपने आप को क्या समझता है? पूरी प्रजा हमारे दर्शन के लिए आयी है और यह ऊपर से ही नमस्कार कर रहा है, नीचे भी नहीं उतरा। इसे सबक सिखाना ही चाहिये, यह सोचकर उसने पास में खड़े मंत्री को सेठ को मृत्यु दण्ड देने का आदेश दे दिया।

सेठ के मन में तो राजा की मृत्यु के बारे में सिर्फ विचार ही आया था..और यह क्या हो गया....राजा ने तो सेठ को मृत्युदण्ड काही आदेश दे दिया।

रात हो गई.. सवारी निकल गई.. सब अपने-अपने घर चले गये। सेठ रात्रि में विचार करने लगा कि अरे! आज राजा की सवारी निकलते समय मेरे मन में उसकी मृत्यु के बारे में विचार आ गया। मैंने राजा के

बारे में ऐसा क्यों सोचा? अगर आज मेरे पिताजी होते तो क्या मैं उनके बारे में भी ऐसा सोचता? राजा भी तो हमारे पिता समान ही होते हैं, प्रजा के पालक ही होते हैं। मुझे उनके बारे में ऐसा नहीं सोचना चाहिए था। मन ही मन उसे अपने विचारों पर आत्मग्लानि होने लगी।

रात बीत गई। सुबह मंत्री ने राजा से कहा कि महाराज मैं उस सेठ को बुलाने के लिये सिपाही भेज देता हूँ, क्योंकि आपने कल उसे फाँसी देने का आदेश दिया था।

राजा का भी विचार बदल चुका था, उसने मंत्री से कहा कि रहने दो, उसकी फाँसी की सजा माफ कर देते हैं। क्या पता क्या कारण रहा हो, जिससे वह नीचे नहीं उतर सका। इतनी छोटी-सी बात के लिये उसे फाँसी पर चढ़ा देना उचित नहीं लग रहा। आखिर सेठ-साहूकारों से ही तो हमारे राज्य की शोभा है। ऐसा कहकर राजा ने सेठ की सजा माफ कर दी।

आप सोचिए कि क्या सेठ को इस बात का पता चला होगा कि राजा ने उसकी फाँसी की सजा माफ कर दी। सेठ को तो यह भी पता नहीं था कि राजा ने उसके लिए फाँसी की सजा का आदेश दिया था। सेठ तो दोनों ही बातों से अनजान था। इसीप्रकार राजा को भी सेठ के भावों का पता नहीं था कि मेरी सवारी निकलते समय चंदन सेठ के मन में मेरी मृत्यु का विचार आया था और बाद में उसे उस विचार का पश्चाताप भी हुआ। राजा और सेठ दोनों ही एक-दूसरे के विचारों से बिलकुल अनजान थे।

ये सब भावों का खेल है। दुनिया की सारी व्यवस्था ऑटोमैटिक/स्वचालित है, जो इसीतरह से चलती रहती है। हमारे मन में किसी के प्रति खोटा भाव आया तो तुरंत ही उसके मन में भी हमारे लिये बुरा

भाव आ सकता है। ये कर्म की चाल ऐसे ही चलती है। इधर भावों में परिवर्तन होता है तो तुरंत ही कर्म बंध भी उसी अनुसार हो जाता है अथवा परिवर्तित हो जाता है और उसका सामने वाले व्यक्ति पर रिएक्शन भी हो जाता है। कहाँ-कहाँ, क्या-क्या इन कर्मों का प्रभाव पड़ रहा है, हमें कुछ भी पता नहीं चलता। इधर हमारे भाव बदले और उधर सामने वाले व्यक्ति के भी भाव बदल सकते हैं।

जैसे हम किसी व्यक्ति के बारे में अच्छा सोचते हैं तो उस व्यक्ति के मन में भी हमारे प्रति अच्छे भाव होने की संभावना बन जाती है और यदि हम किसी व्यक्ति के बारे में बुरा सोचते हैं तो उस व्यक्ति के मन में भी हमारे प्रति द्वेष भाव जाग्रत हो सकता है।

संसार में परिवारों के बिखरने का कारण भी यह भावों की विचित्र दशा ही है। यदि हमें अपने परिजनों की बुराइयाँ नजर आती हैं तो समझ लेना चाहिए कि उनके चित्त में भी हमारे प्रति द्वेष भाव ही पनपेगा और हमारे मुख से यदि अपने परिजनों की प्रशंसा निकलती है तो निश्चित मान कर चलिये कि उनके हृदय में भी हमारे प्रति बहुत प्रेम भाव होगा। ये सहज प्रक्रिया है, इसलिये सब के बारे में हमेशा अच्छा बोलिये, अच्छा सोचिये और अच्छे भाव रखिये - यही घर-परिवार में सुख-शांति का मंत्र है।

परिणामों के बदलने की प्रक्रिया

दिन-रात शुभ और अशुभ भावों से मेरा व्यापार चलता है। शुभभाव और अशुभभाव निरंतर चलते रहते हैं। भावों के परिणमन के अनुरूप कर्मों का आस्रव होता है। अर्थात् कर्मों का आना-जाना लगा रहता है जिस प्रकार व्यापार में आना-जाना लगा रहता है। कभी माल

खरीदते हैं तो कभी माल बेचते हैं। खरीदना और बेचना लगा रहता है। इसप्रकार हमारे शुभ और अशुभ भावों से ही इन कर्मों में भी परिवर्तन होता रहता है। प्रतिक्षण कर्मों की क्रियाएँ चलती रहती हैं। ऐसा कोई क्षण नहीं होता जिस समय कर्म बंधन नहीं हो रहा हो या कर्मों में परिवर्तन नहीं हो रहा हो। यह जो आस्रव हो रहा है वह मन-वचन-काय की चेष्टा से निरंतर हो रहा है। यहाँ प्रश्न उठता है कि आस्रव तो निरंतर हो रहा है लेकिन मंदिर में बैठकर तो पुण्य बाँध रहे होंगे? मंदिर में बैठकर पाप भी बंध रहा है क्या? पुण्य-पाप का बंध हमारे भावों पर ही निर्भर करता है; क्योंकि जो फल लगता है वह भावों का लगता है क्रिया का नहीं। क्रिया से कुछ फर्क नहीं पड़ता है। कितनी क्रिया है, कैसी क्रिया है उस क्रिया से ज्यादा फर्क नहीं पड़ता; फर्क तो हमारे भावों से पड़ता हैं। क्रिया कैसी भी हो; भाव शुद्ध होंगे तो क्रिया भी अच्छी होगी, लेकिन क्रिया के साथ-साथ भावों का अधिक महत्त्व है।

प्रत्येक अंतर्मुहूर्त में भाव बदलते रहते हैं। अच्छे से बुरे और बुरे से अच्छे भाव निरंतर होते रहते हैं। बैठे-बैठे पुण्य भी बाँध सकते हैं और बैठे-बैठे पाप भी बाँध सकते हैं। मंदिर में बैठे-बैठे पाप भी बाँध सकते हैं और घर में बैठे-बैठे पुण्य भी बाँध सकते हैं। दुकान पर बैठकर पुण्य बाँध सकते हैं और मंदिर में बैठकर पाप बाँध सकते हैं। लोग कहते हैं कि पण्डितजी आपने यह तो बहुत अच्छी बात बता दी यदि दुकान पर बैठकर पुण्य बंधता हो तो दुकान पर ही बैठेंगें। यह बात तो किसी पण्डितजी ने हमको आजतक नहीं बताई थी। हम तो दुकान पर बैठकर पुण्य बांधेंगे व्यर्थ ही मंदिर जाकर पाप क्यों बाँधे? ऐसा सोचना गलत है; क्योंकि आपके जैसे भाव होंगे वैसा कर्म बंधेगा, भाव पर ही सब कुछ निर्भर करता है।

कहीं पर भी बैठे-बैठे यह जीव पाप बाँध सकता है। मान लीजिये आप 1 घंटे से प्रवचन सुन रहे हैं तो आपको निश्चित रूप से थोड़ा-बहुत पाप भी बँधा होगा; क्योंकि अंतर्मुहूर्त से ज्यादा कोई भी एक तरह का भाव नहीं रह सकता है, चाहे फिर पुण्य भाव हो या पाप भाव।

एक पुण्य भाव या शुभ परिणाम उसकी अधिकतम सीमा अंतर्मुहूर्त है उसके बाद वह नियम से अशुभ में बदलेगा। इसीप्रकार पाप भाव या अशुभ परिणाम उसकी भी अधिकतम सीमा अंतर्मुहूर्त है। उसके बाद वह भी नियम से शुभ में बदलेगा। अशुभ से शुभ में बदलेगा; इसका अर्थ यह हुआ कि हम १ घंटे मंदिर में बैठे हैं तो केवल पुण्य ही नहीं बाँध रहे वरन् पाप भी बाँध रहे हैं; लेकिन यह हमें पता नहीं चल पाता है। अब कोई प्रश्न करे कि यदि प्रवचन सुन रहे हैं और इसमें भी पाप लगे तो हम कल से प्रवचन सुनना बंद कर दें क्या? नहीं। हमारे साथ ऐसा होता है कि सुनते-सुनते हमारा उपयोग दूसरी ओर चला जाता है। सुनते-सुनते हमारा मन दूसरी ओर चला जाता है। सुनते-सुनते इधर-उधर देखने लग जाते हैं। सुनते-सुनते हमारा ध्यान शरीर की तरफ चला जाता है और हमें पता भी नहीं लगता है कि कब हमारा ध्यान आसन बदलने में चला गया, कब मक्खी उड़ाने में चला गया; यह इतना शीघ्र होता है कि हमें पता ही नहीं चलता। यह इतना तीव्र हो रहा है कि हम पकड़ भी नहीं पाते हैं। कब हमें गर्मी लगने लग जाती है, कब हम मुस्कुराने लगते हैं। कब हम आगे-पीछे हो जाते हैं। कब हम अपने बाल सम्भालने लगते हैं, यह सब पाप है। क्योंकि शरीर की ओर हमारा ध्यान जा रहा है यह पाप कहलाता है। मतलब बैठे-बैठे भी हमारा उपयोग आत्मा की ओर न होकर शरीर की ओर चला जाता है। हमें पता भी नहीं चलता है कि हमारा उपयोग 1 सेकंड में असंख्यात बार बदल जाता है।

आप इतने समय से यह पुस्तक पढ़ रहे हैं, आपकी आँखो की पलकें इसको पढ़ते समय कितनी बार झपकीं। आँखों की पलकें झपकने का अर्थ है कि आँखों के सामने कोई चीज आकर हट गई; आँखों की पलकें झपकने का मतलब आँखे बंद होकर दुबारा खुलीं। जब बंद हुईं तब आपके देखने में कुछ व्यवधान आया होगा? आप कहेंगे नहीं आया क्योंकि यह क्रिया इतनी तीव्रता से हुई कि हमें पता ही नहीं लगा कि हमारी आँखें कब खुली और कब बंद हो गई।

मानतुंग आचार्य ने भक्तामर स्तोत्र में ऐसी भावना व्यक्त की है कि हे! आदिनाथ प्रभु आपको देखते समय इन आँखों की पलकें झपकना भी मुझे आपकी भक्ति में व्यवधान लगता है-

दृष्ट्वा भवंतमनिमेष-विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।।

दृष्ट्वा - देखकर, **भवंतम्** -आपको, आप कैसे है कि **अनिमेष विलोकनीयं** आपको देखते समय पलकों का झपकना भी व्यवधान उत्पन्न करता है। मेरी दृष्टि जब आपको देख रही हो तब मुझे ऐसा लगता है कि ये पलकें भी नहीं झपकनी चाहिए। आपके और मेरे बीच में ये पलकें भी न आयें। आचार्य मानतुंग ऐसी भावना व्यक्त कर रहे हैं।

भाव इतने जल्दी बदल जाते हैं कि बैठे-बैठे दुकान पर हो आते हैं, बैठे-बैठे घर पर चले जाते हैं। बैठे-बैठे व्यापार शुरू कर देते हैं, इधर-उधर की बातें याद आने लगती हैं। सबसे तेज दौड़ने वाला कोई है तो वह मन है। मन बहुत तेजी से दौड़ता है, कहीं भी क्षणभर में जाकर आ सकता है। हमारे मन की प्रवृत्ति पुण्य भी बाँध सकती है और पाप भी बाँध सकती है। यह हमारी प्रवृत्ति पर निर्भर करता है कि हमें किसका बंधन हो रहा है।

वर्तमान के शुभ भावों का महत्त्व

शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य।।3।।

अर्थात् शुभ परिणाम होगा तो पुण्य बंधेगा, अशुभ परिणाम होगा तो पाप बंधेगा। पाप और पुण्य दोनो बाँधना हमारे हाथों में ही है। जब दोनों बाँधना हमारे हाथ में है तो पाप क्यों बाँधना? पुण्य ही बाँधना चाहिए तो यह जीव कहता है कि क्या करें वश नहीं चलता ये अशुभ भाव न चाहते हुए भी आ जाते हैं, ये पाप भाव आ जाते हैं।

तो ज्ञानीजन कहते हैं कि बुद्धि पूर्वक अपना उपयोग तत्त्व विचार में लगाना चाहिए अन्यथा अबुद्धि पूर्वक उपयोग विषय-कषाय की तरफ दौड़ेगा। बुद्धि पूर्वक जिनवाणी को सुनने में अपना उपयोग लगाना चाहिए। बुद्धि पूर्वक देव-शास्त्र-गुरु के सान्निध्य में अपना उपयोग लगाने का प्रयास करना चाहिए। अर्थात् काय की प्रवृत्ति शुभ होना, वचन की प्रवृत्ति शुभ होना और मन में शुभ भाव आना इसप्रकार ये तीनों यदि शुभ होंगे तो पुण्य कर्म का आस्रव होगा। पुण्यकर्म का Balanceबढ़ेगा। आपको पुण्य चाहिए या नहीं? मुझे मालूम है कि तत्त्वाभ्यासी जीवों का जवाब होगा कि हमें पुण्य नहीं चाहिए लेकिन भीतर से तो सब यही चाहते हैं कि पुण्य की प्राप्ति होनी चाहिए। शास्त्र को पढ़कर तो हर व्यक्ति यही कहेगा कि नहीं; पुण्य और पाप दोनों बेड़ी हैं; हमें दोनों नहीं चाहिए। हमें तो धर्म करना है।

अच्छा आप ही बताइए हमारे घर में सम्पत्ति की वृद्धि हो यह अच्छा है या घर में चोरी हो जाये यह अच्छा है; क्योंकि चोरी होती है वह पापकर्म के उदय में होती है और सम्पत्ति बढ़ती है वह पुण्य के उदय से बढ़ती है, तो पुण्य चाहिए या पाप चाहिए? पुण्य और पाप में बहुत बड़ा

अंतर है। दुनिया में वे सम्पूर्ण कार्य जो हमारी इच्छा के विरूद्ध होते हैं, पापकर्म के उदय से होते हैं। जहाँ-जहाँ हमें ऐसा लगे कि मेरे मन के अनुसार कार्य नहीं हुआ अथवा जैसा सोचता था वैसा नहीं हुआ इसका मतलब हमारे पापकर्म का उदय चल रहा है और जब कार्य हमारी इच्छा के अनुसार हो तब समझना चाहिए कि पुण्य का उदय चल रहा है।

हमें ऐसा लगता है कि शाम को डोसे बनना चाहिए और डोसे बन गए मतलब पुण्य का उदय और कभी ऐसा हो कि आप १ महीने तक कहते रहें फिर भी डोसे नहीं बनें इसका अर्थ है कि पाप का उदय चल रहा है। पुण्य-पाप का उदय हमारे अनुभव पर निर्भर करता है कि हम कैसा चाहते हैं। यदि हम स्वस्थ रहना चाहते हैं और तबीयत बिगड़ जाती है तो लगता है कि यह मेरे पाप का उदय चल रहा है।

जब पापकर्म का उदय आता है तब इन्द्रियाँ जवाब देने लगती हैं। हम कहते तो यही हैं कि पाप-पुण्य दोनों नहीं चाहिए लेकिन पहले समझ तो लें कि पुण्य क्या है और पाप क्या है? पाप कर्म के उदय में कोई अच्छे कार्य नहीं होते और पुण्य के उदय से जिनवाणी सुनने को मिलती है। अब बताओ कि पुण्य चाहिए या नहीं चाहिए। अब सबको पुण्य चाहिए, सब एक मिनट में बदल गए। पुण्य के उदय से देव-शास्त्र-गुरु का समागम मिलता है। पुण्य के उदय से वीतरागी जिनशासन मिलता है। पुण्य के उदय से मनुष्य की देह मिलती है। पुण्य के उदय से उत्तम कुल मिलता है। पुण्य के उदय से क्षयोपशम शीघ्र होता है। पुण्य के उदय से सारी अनुकूलताएँ मिलती हैं। पुण्य के उदय से समझ बढ़ती है। पुण्य के उदय से लोग आपकी आज्ञा और निर्देशन में चलते हैं। पुण्य के उदय से यह वीतरागी तत्त्वज्ञान मिलता है। अब पूछता हूँ कि आपको पुण्य चाहिए या नहीं। अब तो सबको पुण्य चाहिए।

यदि पुण्य नहीं होगा तो आपका मन इन धार्मिक कार्यों में नहीं लगेगा। लेकिन पुण्य से काम चल जाएगा ऐसा भी नहीं है। दुनिया में पुण्य से काम चलता भले ही दिखायी देवे वह अलग बात है लेकिन हम तो यहाँ शुभ-अशुभ की चर्चा कर रहे हैं इसी स्तर की बात करें। हम अभी यहाँ शुभ परिणाम की बात कर रहे हैं यदि हमें पुण्य चाहिए तो हमें शुभ भाव करना होगा। शुभ भाव करने के लिए अपने परिणामों को सम्भालो अपने परिणामों को शुभ करो। मन में पापभाव-खोटाभाव मत आने दो। मन में किसी के बारे में बुरा मत सोचो, क्योंकि इधर जैसा सोचा उधर वैसा दिखायी दिया। हमें पता भी नहीं लगेगा और अंदर के अंदर सम्पत्ति साफ हो जाएगी। हमने सम्पत्ति कहीं तिजोरी में रखी और कुछ दिन बाद खोलकर देखी तो गायब हो गई यह क्या हुआ; यह पापकर्म का उदय आया और सामान चोरी चला गया। यह कैसे हो गया?

अंदर हमारे स्टोरेज में पहले का पुण्य बंधा हुआ है, जिसके फल में अनुकूलताएँ मिलती हैं। वह पूरा का पूरा अंदर में स्टोर किया हुआ, पूरी तरह से बदल भी सकता है। हमारे भावों में इतनी ताकत है; जो कम को ज्यादा कर देगा, ज्यादा को कम कर देगा। पुण्य को पाप में बदल दे, पाप को पुण्य में बदल दे। यह शुभाशुभ परिणामों की शक्ति है। "**शुभ:पुण्यस्याशुभ: पापस्य**" पाप करेंगे तो अशुभ कर्म बंधेंगे। पुण्य परिणाम होंगे तो शुभ कर्म बंधेंगे। सीधा-सा सिद्धांत है हमें दिखते नहीं हैं लेकिन कर्म प्रति समय बंधते रहते हैं।

कर्म के अस्तित्व की सिद्धि

कर्म बंध रहे हैं इसका आधार क्या है? हम कैसे मानें कि कर्म बंध रहे हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो कर्म को नहीं मानते हैं। उन्हें तो यह जानना है कि पैसा कैसे बढ़ता है, व्यापार कैसे बढ़ता है या फिर

यह बतला दो कि घर में शांति कैसे रहती है? कुछ इस तरह के उपाय बता दो अन्यथा इन कर्मों को समझने में उनकी कोई रूचि नहीं है, उनकी आत्मा का स्वरूप जानने में भी कोई रूचि नहीं होती है।

यदि कर्म आपको समझ में नहीं आते हैं तो यह जो जगत् में परिवर्तन दिखायी देता है उसका आधार क्या है? किस कारण से इस जगत् में परिवर्तन हो रहा है? सर्वप्रथम तो हमें कर्म की सत्ता स्वीकार करनी होगी। कर्म की सत्ता को यदि नहीं मानेंगे तो जगत् में हो रहे परिवर्तन के कारणों को कैसे जानेंगे? इस बात का गहराई से विचार करें। हमें कर्म की सत्ता स्वीकार करनी होगी। अत: कर्म बंधते भी हैं और उनका फल भी मिलता है।

यह जैन धर्म भक्त नहीं भगवान बनने की बात कहता है। यह जैनधर्म कहता है कि किसी पर भी निर्भर मत रहो यहाँ तक कि भगवान पर भी निर्भर मत रहो। भगवान, भगवान की जगह हैं। वे तीन लोक के नाथ हैं इस बात को हम स्वीकार करते हैं। वे वीतरागी और सर्वज्ञ हैं इसमें हमें कोई ऐतराज नहीं है लेकिन उनकी वीतरागता और सर्वज्ञता मेरे किसी काम की नहीं है। हे प्रभु! आप भगवान होंगे पर सुनिए मैं भी **निश्चित तेरे सदृश प्रभु, अरहंत अवस्था पाऊँगा** आपकी वीतरागता और सर्वज्ञता मेरा प्रयोजन सिद्ध करने वाली नहीं है। मैं भी आपके बगल में आकर बैठने वाला हूँ। आपसे रंच मात्र भी कम नहीं हूँ। मैं कोई कमजोर नहीं हूँ। मुझमें भी वे ही शक्तियाँ हैं। मुझमें भी ऐसी सामर्थ्य है कि मैं भी अपने चित्त को बदलकर, अपने चिंतन को बदलकर, अपनी दृष्टि को बदलकर, आप जैसा बन सकता हूँ। जो कार्य भगवान आपने किया है, वह कार्य मैं भी कर सकता हूँ। अनंत शक्ति सम्पन्न द्रव्य इस देह-देवालय में विराजमान है। अंदर में जो बैठा हुआ है उसको पहचानना है।

क्या भगवान यह भी कर सकते हैं?

जैन दर्शन के अनुसार तो भगवान कोई भी अच्छा-बुरा फल नहीं देते। न तो भगवान परीक्षा में Pass करते हैं न Fail करते हैं। इसीप्रकार भगवान व्यापार में न तो लाभ कराते हैं और न ही हानि। जैन दर्शन के अनुसार भगवान कुछ नहीं देते हैं सबसे पहले यह बात अपने Mind में बैठा लेना।

यह जैनदर्शन का पहला सिद्धांत है, पहला नियम है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी कर्त्ता-धर्त्ता नहीं है। भगवान किसी का भला-बुरा नहीं करते। भगवान किसी के साथ कुछ नहीं करते। भगवान नंबर भी नहीं देते। कुछ नहीं देते हैं। फिर शंका होती है कि जब भगवान कुछ नहीं करते तो हम मंदिर क्यों जाएँ? फिर भगवान मंदिर में क्या कर रहे हैं? भगवान तो सिर्फ देखते हैं और कुछ नहीं करते हैं। सम्पूर्ण देश के जैन मंदिरों में जितनी भी प्रतिमाएँ हैं सारी प्रतिमाएँ हाथ पर हाथ रख कर बैठी हैं।

क्या आपने कभी किसी जैन मंदिर में भगवान महावीर की आशीर्वाद देते हुए प्रतिमा देखी है? क्या किसी ने देखा कि मस्तक पर फूल लगा हो और कोई आए और वे फूल गिर जाएँ; ऐसा कभी नहीं होता है। किसी जैन मंदिर में नहीं होता। तो कोई अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए प्रतिमा देखी है? उनके पास कुछ भी नहीं है। तो प्रश्न उत्पन्न होता है कि आखिर वे करते क्या हैं? न तो मारते हैं, न आशीर्वाद देते हैं। क्योंकि जैनधर्म तो त्याग की बात करता है। वीतरागता की बात करता है। संयम की बात करता है। ग्रहण करने की नहीं, छोड़ने की बात करता है। बाहर में तो क्या छोड़ना है? अंदर में जो मान्यताएँ मान रखी हैं, उन्हें छोड़ना है। राग-द्वेष को छोड़ना है। मोह को छोड़ना है। ममत्व बुद्धि छोड़नी है।

"जिसने राग–द्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया"

जिनेन्द्र भगवान का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आचार्य उमास्वामी लिखते हैं–

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये।।

आपके सामने गुणों की प्राप्ति मुझे हो जाए इसलिए हे जिनेन्द्र देव! मैं आपको वंदन करता हूँ। यही तो जैन दर्शन की अद्वितीय विशेषता है कि भगवान भला भी नहीं करते और भगवान बुरा भी नहीं करते। यदि भगवान ने संसार छोड़ा था या जो कुछ भी छोड़ा था तो यही सोचकर छोड़ा था कि इसमें सुख नहीं हैं। भगवान ग्रहण कैसे करते; क्योंकि जैनधर्म तो त्याग प्रधान है।

कभी–कभी कुछ कार्यक्रमों में दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के लोग आते हैं। तो हम देखते हैं कि एक तरफ तो वेदी पर दिगम्बर प्रतिमा है और दूसरी तरफ श्वेताम्बर प्रतिमा आभूषणों से सजी हुई, शृंगार किए हुए है। तब मैनें उनसे एक प्रश्न किया कि आपके जो साधु हैं हम यदि उनको गोल्ड/सोने की चैन दें तो क्या वे स्वीकार कर लेगें? कोई और आभूषण दें तो क्या वे ले लेंगे? नहीं लेगें; क्योंकि यह परिग्रह है। यदि आप मान रहे हो कि यह परिग्रह है और मुनि अवस्था में वे सोना नहीं रख सकते हैं तो वेदी पर विराजमान भगवान बने हैं तब वे उस अवस्था में सोना कैसे ले सकते हैं? जब मुनि अवस्था में ही आप उसे परिग्रह मान रहे हो, त्याग की बात कर रहे हो तो भगवान बनने के बाद में वे वस्तुएँ कैसे ग्रहण की जा सकती हैं। हमारे भगवान अपरिग्रही होते हैं। परिग्रह के त्यागी होते हैं और वे संदेश भी परिग्रह के त्याग का ही देते हैं। यहाँ भी

यही कह रहे हैं कि पुण्य–पाप का जो उदय है वह भगवान नहीं देते हैं। वे स्वयं के द्वारा किये गये कर्म फल हैं। पुण्यबंधन और पापबंधन दोनों ही हमारे भावों का खेल है, परिणामों का खेल है।

परिणामे बंधुजि कहिउ मोक्ख वि तह जि वियाणि।
इउ जाणेविणु जीत तुहुँ तह भावहु परियाणि।।14।।
परिणाम से ही बंध है और मोक्ष भी परिणाम से।
यह जानकर हे भव्यजन परिणाम को पहिचानिए।।14।।

योगसार ग्रन्थ में योगीन्दु देव लिखते हैं कि –

पुण्णि पावइ सग्ग जिउ पावइ णरयणिवासु।
बे छंडिवि अप्पा मुणइ तउ लब्भइ सिववासु।।32।।
पुण्य से हो स्वर्ग नर्क निवास होवे पाप से।
पर मुक्ति –रमणी प्राप्त होती आत्मा के ध्यान से।।32।।

इसप्रकार परिणाम यदि अच्छी क्रियाओं की तरफ लगेंगे तो पुण्य बंधेगा और परिणाम खोटी क्रियाओं की तरफ लगेंगे तो पाप बंधेगा और यदि ये परिणाम अच्छी और खोटी क्रियाओं से हटकर अपने स्वभाव की ओर लगेंगें तो मुक्ति का मार्ग प्रारंभ हो जाएगा। इसलिए यदि हम वास्तव में मुक्ति का मार्ग अपने जीवन में प्रारंभ करना चाहते हैं तो पाप–पुण्य दोनों से दृष्टि हटाकर अपना उपयोग स्वभाव पर लाना होगा।

क्या कर्म को समझने की आवश्यकता है?

हमारे साथ में जो भी परिस्थितियाँ बनती हैं। जो भी हमारे साथ हो रहा है उन सभी परिस्थितियों का कारण हमारे ही कर्म का उदय है; क्योंकि हमारे भगवान तो हाथ पर हाथ रखकर बैठे हुए हैं। इसका मतलब भगवान कुछ भी नहीं करते। हिन्दू धर्म में तो भगवान कर्ता हैं,

भगवान भला–बुरा करते हैं, वे सजा भी देते हैं, वे बचाते भी हैं लेकिन हमारे यहाँ तो भगवान करते नहीं हैं। यदि भगवान नहीं करते हैं तो फिर कौन करता है? कोई तो होगा करने वाला? जो लोग भगवान को कर्ता–धर्ता मानते हैं उनकी समस्या का तो समाधान हो गया। उन्होंने जो भी किया भगवान ने उसका फल दे दिया; लेकिन भगवान यदि फल नहीं देंगे तो कौन देगा? कोई तो फल देने वाला होना चाहिए। हिन्दू धर्म के अनुसार तो चित्रगुप्त हैं जो कर्मों का हिसाब–किताब देखते हैं। मृत व्यक्ति को यमराज यहाँ से ले जाते हैं और चित्रगुप्त उसका रिकॉर्ड देखकर उसके हिसाब से उसको नरक–स्वर्ग जहाँ भेजना है वहाँ भेज देते हैं। जैन दर्शन में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। फिर मरने के बाद की व्यवस्था कौन करता है? यह व्यवस्था करने वाला स्वयं ही है अथवा स्वयं के कर्म हैं।

कोई भगवान के द्वारा करने–धरने की बात कहता है तो मैं उससे कहता हूँ कि यदि किसी ने अच्छे काम किये हैं तो भगवान क्या करेंगे? उसने कहा- जो अच्छा काम करते है उन्हें अच्छा फल देते हैं इसप्रकार जो खराब काम करते हैं उन्हें खराब फल देते हैं; दुनिया में लोग ऐसा समझते हैं, तो मेरा प्रश्न यह है कि जब भगवान अच्छे काम का अच्छा फल देते हैं तो क्या कभी ऐसा भी होता है कि हम कोई खराब काम करें और भगवान से माफी माँग लें तो भगवान हमें माफ कर देंगे? आपके अनुसार ऐसा होना चाहिए क्या? न्याय क्या है? न्याय तो होना चाहिए। हमने कोई बुरा काम किया और भगवान के पास जाकर हमने कहा प्लीज़ भगवान हमें बचा लेना, सजा मत देना और भगवान ने बचा लिया। जैन दर्शन में तो कहा कि यदि भगवान भी किसी को बचा लेता है तो वह भगवान भी अपराधी हो जाता है।

'शरण जो अपराधी को दे, अरे अपराधी वह भगवान' अर्थात् वह भगवान भी अपराधी हो जाएगा। अपराधी को शरण देना अच्छी बात है क्या?

उदाहरण के लिये एक व्यक्ति ने रोड़ पर किसी व्यक्ति की हत्या कर दी, जान से मार दिया। सब लोगों ने उसको हत्या करते हुए देखा; लेकिन कानून तो कानून है, क्रम से चलेगा, तुरंत फैसला नहीं आता है, समय लगता है। पहले मुकदमा दर्ज होगा, रिपोर्ट बनेगी, पुलिस जाँच-पड़ताल करेगी, गवाह आएँगे, कोर्ट में सुनवाई होगी। फिर मजिस्ट्रेट उसको सजा सुनाएगा। यह सारी प्रक्रिया चलेगी। सब व्यक्ति यही चाहेंगे कि जिसने हत्या की है उस व्यक्ति को सजा मिले; लेकिन जज ने फैसला सुनाया कि मारने वाले की कोई गलती नहीं है उसे बाइज्जत बरी किया जाता है। आप लोग इस घटना पर, इस फैसले पर क्या कहेंगे कि हमें तो लग रहा है कि यह जज बिक गया है क्योंकि सरेआम इसने हत्या की है, अनेक व्यक्तियों ने देखा है, उसके गवाह भी मौजूद हैं, इसके बावजूद भी इसे बरी कर दिया गया है। इसका अर्थ है कि यह जज बिक गया है। जज भी अपराधी है। हम यही बात कहना चाह रहे हैं कि जिस तरह से किसी अपराधी व्यक्ति को सज़ा न देने वाला जज भी आपकी निगाह में अपराधी कहलाता है तो भगवान की शरण में जाने पर उसे अपराध का फल नहीं मिले तो भगवान के ऊपर अंगुलियाँ उठने लग जाएँगीं कि ये तो बेईमान हैं, इन्होंने गलत काम किया है, इनको ऐसा नहीं करना चाहिए।

दुख का मूल कारण

सुख सबको पसंद है। सभी सुखी होना चाहते हैं। जिस व्यक्ति से भी पूछा जाए तो वह यही कहेगा कि मैं सुखी होना चाहता हूँ इसका आशय यह है कि वह अभी तक दु:खी था, तभी सुख की चाह कर

रहा है। भारत में तो सभी लोग दु:खी हैं लेकिन विदेशों में तो सुखी होगें? नहीं! विदेशों में भी लोग दु:खी हैं। अगर हमें सुखी होना है तो हम क्या करें? सबसे पहले तो यह जानना होगा कि हम दु:खी क्यों हैं, दु:ख का कारण क्या है? क्योंकि जब दु:ख का कारण पता चलेगा तब कारण को हटा कर सुखी हुआ जा सकता है। दु:ख का कोई एक कारण नहीं है। कोई मौसम के कारण दु:खी है तो कोई परिवार की वजह से दु:खी है। कोई व्यापार को लेकर दु:खी है। तो कोई बीमारी से दु:खी है। कोई घुटने के दर्द से दु:खी है तो कोई बालों के जल्दी ही सफेद होने से दुखी है। ये सभी अनिष्ट संयोग दु:ख के कारण हैं। दु:ख के अनेक कारण हमें नज़र आते हैं लेकिन क्या वास्तव में वे ही दु:ख के कारण हैं?

दु:ख का मूल कारण भावकर्म है

दुनियाँ में कोई भी वस्तु या कोई भी पदार्थ हमारे दु:ख का कारण नहीं है। यदि दु:ख का कारण नहीं है, तो सुख का कारण भी नहीं है। यह हमारी दृष्टि जो बाहर की ओर दौड़ती है यह दु:ख का कारण है। हम अपने परिणामों से दु:खी हैं। हम अपने भावों से दु:खी हैं। हम अपनी सोच से दु:खी हैं। इसको बदल दो, उसको बदल दो। ऐसा हो जाना चाहिए। ऐसा क्यों नहीं हुआ ऐसा हो जाता तो अच्छा होता। 8:15 पर प्रवचन का समय था। 8:00 बजे क्यों कर दिया। 8:30 का क्यों नहीं किया। ऐसा हो जाता तो अच्छा हो जाता। ४५ मिनिट का ही ठीक था। 1 घंटे का क्यों रख दिया और कुछ लोग सोचते हैं कि कम से कम 1:30 घंटे का तो रखते १ घंटे का क्यों रखा। कोई कम समय से परेशान है तो कोई ज्यादा समय को लेकर परेशान है। कोई जल्दी बुलाने पर परेशान है तो कोई देर से बुलाने पर परेशान है। कोई गर्मी से परेशान है तो कोई सर्दी से परेशान है। कोई खाने में मिर्च से

परेशान है तो कोई कम मिर्च से परेशान है। इसप्रकार हर व्यक्ति अपनी सोच से दु:खी है। उस सोच को ही यहाँ भावकर्म कहा है।

ये जितने भी भाव हैं वे सुबह से शाम तक चलते रहते हैं। जैसे भाव होंगे वैसे ही ये पुद्गल कर्म परमाणु हमारे आत्मा के साथ आकर चिपक जाएँगे। भाव होने पर भी हमें कुछ पता नहीं चलना। द्रव्य कर्म बंधे थे तब भी हमें कुछ पता नहीं लगा था क्योंकि जब कर्म बंधन होता है तब हमें पता नहीं चलता। हर समय कोई हमको बांध रहा है यह हमें पता नहीं चलता। हमें तो कोई रस्सी से बांधता है तो पता लगता है। कोई व्यक्ति जेल में डालता है तो पता लगता है। कोई सांखलों से बांधता है तो पता लगता है कि हम बंधे हुए हैं लेकिन आपसे कहा जाए कि आप हर समय बंध रहे हैं। कोई आपको बांध रहा हैं तो आप कहेंगे कि हम कहाँ बंध रहे हैं। हम तो खुले हुए हैं। हम उठना-बैठना, चलना-फिरना सबकुछ कर रहें हैं। हम कहाँ बंधन में हैं। यह बंधन है, जो अदृश्य है। हमें प्रत्यक्ष रूप से दिखता नहीं है। भाव हुए और कर्म बंध गए। **जो बंध गए उसका नाम द्रव्यकर्म है, जिस कारण से बंधे उसका नाम भाव कर्म है।** भावों के कारण कर्म बंधा लेकिन बंधने पर फर्क नहीं पड़ता, फर्क तो तब पड़ता है जब इसका फल मिलता है। द्रव्य कर्म के बंधने के बाद जो फल मिला, उसे नोकर्म कहते हैं।

नोकर्म में बदलाव का निषेध

भाव कर्म के द्वारा द्रव्यकर्म बंधा और द्रव्य कर्म का जब फल मिला तो फल मिलने पर जो संयोग प्राप्त होते हैं उन संयोगों को नोकर्म कहते हैं। नोकर्म अर्थात् नौकर। ये नोकर्म द्रव्य कर्म का नौकर है; नौकर वह होता है जो अपने मालिक के आदेशानुसार चले। शरीर, घर-बार,

महल, कपड़े, गाड़ी और नौकरी जो भी है वह सब नोकर्म हैं या कहें नौकर हैं, द्रव्य कर्म के नौकर हैं। ये नोकर्म हमारे नौकर नहीं हैं। यदि हमारे नौकर होते तो हमारे कहे अनुसार चलते; लेकिन ये तो द्रव्य कर्मों के अनुसार चलते हैं।

हम द्रव्यकर्म को तो पहचानते नहीं हैं, भावकर्मों की खबर नहीं है और नोकर्म को बदलना चाहते हैं। हमारे जितने भी प्रयास हो रहे हैं, वे सब नोकर्म में ही हो रहे हैं। धन-धान्य हो, रहन-सहन अच्छा हो, रोटी-कपड़ा-मकान आदि की प्राप्ति हो ये यह सब नोकर्म हैं। हमारी सारी भाग-दौड़, मेहनत इन नोकर्म के पीछे हो रही है जबकि यह नोकर्म हमारे नियंत्रण (कंट्रोल) में नहीं है। इस नोकर्म का नियंत्रण (कंट्रोल) द्रव्य कर्म के पास में है और हम नोकर्म पर मेहनत किये जा रहे हैं कभी यह मेहनत सफल होती हुई दिखायी देती है और कभी यह मेहनत असफल होती हुई दिखायी देती है; लेकिन वास्तविकता तो यह है कि जब भी हमें ऐसा लगता है कि यह नोकर्म हमारे अनुसार चल रहा है तब भी वह द्रव्य कर्म के अनुसार ही चल रहा होता है। हमें भ्रम हो जाता है कि यह हमारे अनुसार चल रहा है। कोई हमसे कहे कि इस उम्र में भी आपने अपने को मेंटेन कर रखा है तब हम कहते हैं कि- मैं रोज व्यायाम करता हूँ, वॉक करता हूँ, खाने-पीने पर पूरा ध्यान देता हूँ; परन्तु यह जो आपका शरीर मैंटेन रहता है वह नोकर्म के कारण से रहता है। एक ओर हमें भ्रम होता है कि इस नोकर्म को मैंने नियंत्रण (कंट्रोल) कर रखा है। दूसरी ओर शास्त्र कह रहें हैं कि इस नोकर्म का नियंत्रण (कंट्रोल) द्रव्य कर्म के पास में है। द्रव्य कर्म का जैसा उदय आएगा वैसा नोकर्म बदलेगा। यह नोकर्म अनुकूल है, यह नोकर्म प्रतिकूल हैं। आवाज कैसी होगी, शरीर कैसा होगा, हमारे मुख में दांत

कितने रहेंगे, कब हिलना प्रारंभ हो जायेंगें, कब वापस मजबूत हो जाएँगे, कब निकलकर बाहर आ जाएँगें, सिर पर बाल रहेंगे या नहीं रहेंगे और रहेंगे तो कितने सफेद होंगे और कितने काले रहेंगे यह सब द्रव्य कर्म पर निर्भर करता है।

जब काम हमारी इच्छा के अनुसार होता है तब हम कहते हैं कि मैंने किया और जब हमारी इच्छा के अनुसार नहीं होता है तब हम कहतें है मैं क्या करूँ मेरे मेहनत करने के बावजूद भी इस पर मेरी नहीं चल रही है और शास्त्र कहते हैं कि जब आपको लग रहा था कि इस नोकर्म में मेरी चल रही थी वास्तव में तो तब भी आपकी नहीं चल रही थी तब भी वह द्रव्य कर्म के उदय के अनुसार ही चल रहा था।

अब प्रश्न होता है कि इस नोकर्म को बदलने के लिये हम क्या करें? शरीर को स्वस्थ रखने के लिय क्या करें? वज़न बढ़ाने के लिये क्या करें? खूब खाएँ, परन्तु यह तो नोकर्म है जिस पर हमारा वश नहीं है और वजन कम करने के लिये क्या करें? डाइटिंग; डाइटिंग भी नोकर्म है। इस नोकर्म में परिवर्तन करने से डाइटिंग करने से क्या आपका वजन कम हो जाएगा? कई लोग कहते हैं कि इतना कम खाने पर भी वजन तो कम नही हो रहा है; बल्कि बढ़ता ही जा रहा है। कुछ लोग ऐसे भी मिलेंगे जो कहेंगे कि मैं बहुत खाता हूँ लेकिन मेरा वज़न बढ़ता ही नहीं है। अब क्या करें? अरे! आप जिसमें परिवर्तन करने की सोच रहे हैं या परिवर्तन कर रहें हैं वह नोकर्म है और नोकर्म में परिवर्तन करने से परिवर्तन नहीं होगा। परिवर्तन द्रव्यकर्म में करना होगा; लेकिन यह बड़ा मुश्किल काम है, क्योंकि द्रव्यकर्म तो दिखते नहीं हैं और जो दिखते हैं, वे नोकर्म हैं। गाड़ी बदलना है, गाड़ी यहाँ नहीं वहाँ पार्क करनी है, मकान बदलना है इस नोकर्म में तो हम परिवर्तन कर सकते

थे लेकिन आप कह रहे हो कि इनमें परिवर्तन करने से कुछ नहीं होगा और द्रव्य कर्म में परिवर्तन करो लेकिन वह तो दिखायी नहीं देता है। अब हम क्या करें, यहाँ तो और ज्यादा मुश्किल खड़ी हो गई। नोकर्म हमें दिखाई देता था तो हम उसमें परिवर्तन कर लेते थे लेकिन आप कह रहे हो कि नोकर्म में कुछ भी परिवर्तन नहीं होगा। परिवर्तन द्रव्यकर्म से होगा जो हमें दिखाई नहीं देता है। अब क्या करें जो दिखता है उसमें परिवर्तन करने से कुछ होगा नहीं और जो नहीं दिखायी दे रहा है उसमें परिवर्तन करना है तो वह कैसे होगा?

भावकर्म में सुधार की प्रेरणा

अब हमें क्या करना है? हमें भावों को सुधारना है। भावों की तरफ तो दृष्टि नहीं है और केवल नोकर्म को सुधारना चाहते हैं जो द्रव्यकर्म के कंट्रोल में है इसलिए सब गड़बड़ हो रहा है।

टोडरमलजी मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ में बार-बार कहते हैं कि- "**हे जीव! फल तो परिणामों का लगता है। इसलिए अपने परिणामों को सम्भालो।**" यह पूरी व्यवस्था हमारे हाथों में है इसप्रकार यदि भाव कर्म सम्भल गए तो द्रव्यकर्म सुधर जाएँगे और द्रव्य कर्म में सुधार होगा तो नोकर्म अपने आप सुधर जायेगा। नोकर्म के प्रति राग-द्वेष नहीं होगा तो भाव कर्म नहीं होगा और भावकर्म नहीं होगा तो द्रव्य कर्म भी नहीं बंधेगा। द्रव्यकर्म नहीं बंधेगा तो नोकर्म नहीं मिलेगा इस तरह मुक्ति हो जाएगी। मोक्ष प्राप्त करने के लिए भावकर्म को जीतना है। राग-द्वेष को जीतना है, इसका अर्थ यह है कि जिसे जीतना है वह बाहर में नहीं है; जो अंदर में है उसे जीतना है, समस्या भीतर में है। समस्या जहाँ है, वहाँ तक हम पहुँच नहीं पा रहे हैं इसलिए समस्याएँ खड़ी हो रही हैं।

एक व्यक्ति के हाथ में चाय का प्याला है, वह चाय पी रहा है और इतने में ही किसी दूसरे व्यक्ति ने टक्कर मार दी और चाय गिर गई। हम व्यवहार में कहेंगे कि उस व्यक्ति ने टक्कर मारी और चाय गिर गई। परन्तु ऐसा नहीं है वास्तव में तो उस प्याले में चाय थी इसलिए ही चाय गिरी। टक्कर लगने मात्र से चाय नहीं गिरी। यदि उस प्याले में चाय नहीं होती तो टक्कर लगने पर भी कैसे गिरती। यदि वह पानी का ग्लास होता तो टक्कर लगने पर पानी गिरता तो टक्कर लगने से चाय गिरती है या नहीं? कहने का आशय यह है कि जो होगा वही गिरेगा।

यहाँ समझने की बात यह है कि हमें जो संयोग मिले हैं उन संयोगों के मिलने पर हमने क्या प्रतिक्रिया की। हमारे भीतर से क्या भाव व्यक्त हुए। जो भी संयोग मिले, जो भी परिस्थितियाँ बनी। वे परिस्थितियाँ अनुकूल थीं या प्रतिकूल थीं। किसी ने सामने से जवाब दे दिया, कोई नुकसान हो गया, चोरी हो गई या एक्सीडेंट हो गया, कुछ भी हुआ हो उसके होने पर हमने क्या प्रतिक्रिया दी। जैसी परिणति हमारे अंतरंग में होगी हम वैसी ही प्रतिक्रिया देंगे। यदि हमारे अंतरंग में तत्त्वज्ञान होगा तो हम प्रतिक्रिया में स्वत: ही सहज रहेंगे।

हमारी सहजता, शांति और चित्त की निर्मलता, हमारे अध्ययन और तत्त्वज्ञान की गहराई पर निर्भर करती है। हमें यह ध्यान रखना होगा कि हमारे परिणाम किस प्रकार के हो रहे हैं? भावों से अन्तरंग में जैसा कर्म बंधेगा वैसा फल मिलेगा। यदि हम फल बदलना चाहते हैं तो कर्म बदलना पड़ेगा और कर्म बदलना चाहते हैं तो भाव बदलने पड़ेंगे।

अतएव पण्डित टोडरमलजी कहते हैं कि '**अपने भावों की सम्भाल करो, अपने परिणामों को सम्भालो**' लेकिन परिणामों को सम्हालने में गाफिल मत हो जाना। **अपरिणामी तत्त्व की दृष्टि रखने पर परिणाम**

सम्भालते हैं। जो भीतर में अपरिणामी तत्त्व हैं उस तत्त्व पर जिसकी दृष्टि होती है उसे परिणाम सम्भालने नहीं पड़ते हैं; अपितु उसके परिणाम स्वत: सम्भलते हैं। उसके परिणाम सुधरते हैं। भाव सुधारो, परिणाम सुधरेंगे।

भाव–द्रव्य–नोकर्म संसारचक्र :– यह द्रव्यकर्म पूर्ण रूप से भावकर्म पर निर्भर करता है। भाव कर्म से द्रव्यकर्म और द्रव्यकर्म के उदय से नोकर्म की प्राप्ति होती है और जब नोकर्म मिलते हैं तब यह जीव उनमें राग–द्वेष करता है। जिससे भावकर्म बंधता है और भावकर्म से द्रव्यकर्म का बंध होता है। इसप्रकार ये चक्र निरंतर चलता रहता है। इसे ही संसार चक्र कहते हैं। जो कि अनादि काल से चला आ रहा है और जब तक मोक्ष की प्राप्ति न हो, तब तक इस संसार चक्र का विच्छेद नहीं होता है।

किसी को किसी और के कर्म का फल नहीं मिलता

हम कर्म के संबंध में बात कर रहे हैं। यह सारा झगड़ा कर्म का है। कौन–सा कर्म कब बंधता है? कौन–सा कर्म बंधता है तो क्या परिस्थिति बनती है? उस कर्म को बदलने के लिये क्या करें? हमारे साथ में जो परिस्थितियाँ दिखायी दे रही हैं उन सब के पीछे क्या–क्या कारण हैं? उन सबकी चर्चा हम यहाँ करेंगे। हमें पता लगेगा कि हमें याद क्यों नहीं होता है, हमें पता लगेगा कि यह विषय समझ में क्यों नहीं आता है, हमें पता लगेगा कि बच्चे कहना क्यों नहीं मानते हैं, हमें पता लगेगा कि आपके साथ ही ऐसा क्यों हुआ। कई लोग ऐसा कहते हुए मिल जाएँगे कि मेरे साथ ही ऐसा क्यों हुआ? हर बार मेरे साथ ही ऐसा क्यों होता है; आखिर मैंने ऐसे कौन–से पाप किये थे? मैंने तो आजतक किसी का बुरा नहीं किया, फिर भी मेरे साथ ही ऐसा क्यों होता है, ऐसे वाक्य कई लोग बोलते हुए मिल जाएँगे। मेरी तबीयत

बार-बार बिगड़ जाती है। घर में पैसों की समस्या है, नौकर-चाकर की समस्या है आखिर मेरे साथ ही ऐसा क्यों होता है? हम जरा विचार करें कि किसी दूसरे द्वारा किये गए कर्म का फल हमें नहीं मिलता है। अपितु अपने ही द्वारा किए कर्मों का फल हमें मिलता है। और वे कर्म पूर्व में हमने ही बांधे हैं। हमें यदि किसी और के किए हुए कर्म का फल मिले तो फिर हमारे किए हुए कर्म का फल किसको मिलेगा?

कुछ लोग कहते हैं कि घर के जो बड़े-बुजुर्ग लोग थे उनके किए का फल हम भुगत रहे हैं। उन्होंने अच्छा किया था, जिसका फल हमें मिल रहा है या उन्होंने कर्ज ले लिया था तो वह अब हमें चुकाना पड़ रहा है अथवा उन्होंने इतना कमाया था, वे कमा कर छोड़ गए हैं तो हम लोग भोग रहे हैं। मतलब उन्होंने ऐसा किया जिसका फल हमें मिल रहा है। क्या वास्तव में ऐसा होता है कि करे कोई और फल किसी और को मिले? काम हमने किया और फल किसी और को मिले तो क्या यह न्याय होगा?

मान लीजिए आपने कोई अच्छा काम किया और उसका फल आपके बेटे को मिल जाए तो आपको कैसा लगता है? यह तो हर व्यक्ति चाहता है कि उसके बच्चे को अच्छा फल मिले। मैं अच्छा काम करूँ और उसका फल बेटे को मिल जाए और यदि आपने खराब काम किए हों और उसका फल बच्चों को मिले, तो यह कोई नहीं चाहता तो जब बच्चे को खराब फल नहीं देना चाहते हो तो अच्छा फल क्यों ट्रांसफर करना चाहते हो? आपके पिताजी ने जितने अच्छे काम किये थे, जितना कमाया था वह सब सम्पत्ति हमें मिल जाए यह तो हम सब चाहते हैं तो हम यह क्यों नहीं चाहते कि उन्होंने जितना कर्ज लिया था वह सब हमें चुकाना पड़े; परन्तु ऐसा होता ही नहीं है, उनका कर्ज हमें नहीं चुकाना पड़ता।

कई बार लोगों के मुँह से सुनते हैं कि आज तो हमारा इतना भयंकर एक्सीडेंट होने वाला था, रोड़ क्रॉस करते समय गाड़ी सामने से आ गई बस समझ लीजिए कि आज भाग्य ने साथ दिया और हमने तो क्या किया। हमारे बड़े-बुजुर्गों का कोई पुण्य आड़े आ गया। उनका किया हुआ था कुछ। वे हमारे बाबूजी थे, जो रोज मंदिर जाते थे, वे रोजाना जो धर्म-कर्म करते थे आज तो उन्हीं का पुण्य हमारे काम आ गया, सो हम बच गए। हम विचार करें कि क्या ऐसा होता है? किसी का पुण्य किसी और के काम आता है? यह पुण्य कभी ट्रांसफर भी होता है क्या? पुण्य ट्रांसफर नहीं होता लेकिन पैसा तो ट्रांसफर होता है? पैसा भी ट्रांसफर नहीं होता है, जिसका होगा तो उसको मिलेगा। उसके खुद के निजी पुण्य कर्म का उदय होगा तो मिलेगा। जितने पुण्य का उदय होगा उतना ही मिलेगा। हमारे पुण्य को कोई और भोगे ऐसा नहीं है। हमने कमाया, हमने पुरूषार्थ किया और फल किसी और को मिले ऐसा नहीं है। हम जो द्रव्य कर्म बाँधकर लाए हैं। वह ही हमें प्राप्त होगा अर्थात् उदय में आएगा।

कर्म रूपी शरीर

द्रव्यकर्म-पाँच प्रकार के शरीरों में एक शरीर कहलाता है। जिसे कार्मण शरीर कहते हैं। पाँचवे शरीर का नाम कार्मण शरीर है। यह कर्म ही तो कार्मण शरीर है।

एक बार परीक्षा में किसी बच्चे ने पाँच शरीरों के नाम लिखे 1. औदारिक 2. वैक्रियक 3. आहारक 4. तैजस और 5. कार्मण शरीर लेकिन उस बच्चे ने कार्मण की जगह कॉर्बन शरीर लिखा। जब मैं कॉपी चैक कर रहा था तो देखा कि इसने उत्तर में गलती कर दी है पर जब गहराई से विचार किया तो लगा कि यह कार्मण शरीर वास्तव में कार्बन

शरीर ही तो है। यह तो कार्बन कॉपी है कि हम जो भी कर रहे हैं हमारे द्वारा जो भी किया जा रहा है उसकी एक डुप्लीकेट कॉपी तैयार हो रही है और उस कॉपी का नाम है कार्बन कॉपी। ये कार्बन कॉपी-द्रव्य कर्म है। द्रव्य कर्म डुप्लीकेट कॉपी है जो तैयार हो रही है जिसके आधार पर हमें फल मिलेगा। जिसके आधार पर भविष्य का फैसला होगा। हमारा जो भविष्य है वह इस बात पर निर्भर करता है कि हमें कैसे कर्म बंध रहे हैं।

हर व्यक्ति को अपने-अपने कर्म का फल मिलता है। एक के कर्म का फल दूसरे को नहीं मिलता है। यह कर्म सिद्धांत है जो यह बताना चाह रहा है कि कर्म को मिल-जुल कर नहीं भोगा जा सकता है।

फिर हमारे मन में एक प्रश्न उपस्थित होता है कि जो यह मौसम खराब हुआ तो यह किसके कर्म के उदय से खराब हुआ? सुनो, मौसम जिसको जैसा लग रहा है, उसके वैसे कर्म का उदय है यदि एक व्यक्ति को बहुत अच्छा लग रहा है उसके वैसे कर्म का उदय है। एक को अच्छा नहीं लग रहा है तो उसके वैसे कर्म का उदय है। इसका अर्थ यह है कि द्रव्य कर्म जैसा होगा वैसा आप महसूस करेंगे। उसी एक परिस्थिति में सब अलग-अलग अनुभव करेंगे। किसी को बारिश होना अच्छा लगता है। किसी को बारिश होना खराब लगता है तो किसी को लगता है कि गर्मी बहुत बढ़ रही है मौसम बदलना चाहिए, बरसात होनी चाहिए। एक व्यक्ति धोबी है कपड़े धोता है, कपड़े सुखाता है वह सोचता है कि बरसात नहीं होनी चाहिए, धूप निकलनी चाहिए। तीन दिन हो गए धूप नहीं निकल रही है, कपड़े नहीं सूख रहे हैं। बिजनेस ठप्प पड़ा हुआ है। हमारा काम रूक गया है। वह चाहता है कि बरसात नहीं हो। किसान, माली चाहते हैं कि बरसात होनी चाहिए अब आप बताओ बरसात किसके अनुसार होगी।

एक मकान में यदि पाँच लोग रह रहे हैं तो हर व्यक्ति का अपने-अपने कर्म का उदय है। सब मिलकर नहीं भोग रहे हैं। वस्तु किसी के कर्म के उदय से नहीं मिलती है। वस्तु में जैसी अनुकूलता-प्रतिकूलता का वेदन होता है वैसे कर्म का उदय होता है।

हमने तीनों कर्म द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म की चर्चा की है और इसके आधार पर कहा जा सकता है कि केवल भाव कर्म पर हमारा वश है। भावकर्म में हम फेर-बदल कर सकते हैं। हम न तो नोकर्म अर्थात् संयोग में बदलाव कर सकते हैं और न ही द्रव्यकर्म में परिवर्तन कर सकते हैं। पर हमारा सारा समय नोकर्म की उठा-पठक में ही लगा रहता है। हमारे पास जो करेंसी है। नोट हैं वे सब नोकर्म है। हमारी जो Jobहै, बिजनेस है, खान-पान है, हमारे जो एक-एक बॉडी-पार्ट हैं, हमारे जो परिवार के सदस्य हैं वे सब नोकर्म है।

अब प्रश्न खड़ा होता है कि पत्नी-पुत्रादिक का मिलना पुण्य के उदय से है या पापकर्म के उदय से? हमें जो परिवार मिला हुआ है वह पुण्य के उदय से मिला है या पाप के उदय से? इसका एक तरफा उत्तर नहीं है। यह पुण्य या पाप के उदय से नहीं मिलता। जिस समय परिवार के सदस्य हमें अपने अनुकूल लगते हैं उस समय पुण्य का उदय होता है और जिस समय प्रतिकूल लगते हैं उस समय पाप कर्म का उदय होता है, उदय बदल जाता है और पदार्थ वैसा का वैसा बना रहता है। जो पदार्थ जैसा है वह पदार्थ वैसा ही रहेगा। उदय बदल गया तो वह पदार्थ बुरा लगने लग गया और फिर से उदय बदल गया तो वही वस्तु अच्छी लगने लग गई। हमें वस्तु को नहीं बदलना है। वस्तु के बदलने से फर्क नहीं पड़ता है। हम संयोगो में बदलाव करते हैं। लेकिन वास्तविकता तो यह है कि उदय बदलेगा तो सबकुछ बदल जाएगा।

जो हमें अच्छे लग रहे हैं वे हमें बुरे लगने लग जाते हैं और जो हमें बुरे लग रहे हैं वे हमें अच्छे लगने लग जाते हैं।

'मित्र अरि हो जाये जगत में अशुभ उदय के आने से'। पापकर्म का उदय आता है तो मित्र भी शत्रु हो जाते हैं। और पुण्यकर्म का उदय आता है तो शत्रु भी मित्र हो जाते हैं।

कमल का फूल जब खिलता है, तो उसे कोई नहीं खिलाता है। वह सूर्योदय होने पर स्वत: ही खिलता है। लेकिन जब वही कमल का फूल अपनी जगह से हट जाए या टूट कर पानी में गिर जाए तो वही पानी उसे गलाने लगता है। उसी सूर्य की किरणें उसे नष्ट करने लगती हैं। यह क्या हो गया, उसका समय बदल गया, सब समय का फेर है।

सीता की अग्नि परीक्षा हुई और देवों ने अग्नि को जल बना दिया। तब एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब रावण सीता को उठाकर ले जा रहा था तब सीता को बचाने वे देव क्यों नहीं आए थे। अग्नि परीक्षा के समय तो देव आ गए थे; लेकिन रावण के द्वारा सीता के अपहरण के समय देव क्यों नहीं आए? पापकर्म का उदय आता है तो कोई बचाने वाला नहीं मिलता है।

ऋषभदेव स्वामी जब गर्भ में आये तब उससे 6 माह पूर्व से रत्नों की वर्षा होने लगी थी और जब 9 माह गर्भ में रहे तब भी वर्षा होती रही। इस प्रकार 15 माह तक रत्नों की बरसात होती रही। देवगण गर्भ कल्याणक मनाने आए, जन्म कल्याणक मनाने आए, दीक्षा हुई तब भी देवगण दीक्षा कल्याण मनाने आए। उसके बाद ६ माह तक ऋषभदेव ध्यान अवस्था में रहे। पश्चात् जब उन्हें आहार की विधि नहीं मिल रही थी तब देव क्यों नहीं आये? किसी देव ने किसी गृहस्थ को

समझाया नहीं कि आहारदान की विधि क्या है? कैसे आहार दिया जाता है? ऋषभदेव क्यों प्रतिदिन भ्रमण कर रहे हैं? किसी देव को समझाने का विकल्प क्यों नहीं आया। क्या सारे देव थक गये थे, तीन कल्याण मना लिए और अभी तो दीक्षा कल्याणक मनाकर आए है, अब थोड़े समय तो आराम करेंगे। लेकिन असली कारण तो यह है कि अब उदय बदल गया है। उदय बदलने पर सब कुछ बदल जाता है। वर्तमान में द्रव्यकर्म का जो भी उदय हमें दिखाई दे रहा है वह भी पूर्वकाल में हमारे द्वारा बाँधे हुए कर्म का फल ही है। इसका अर्थ है कि जितने भी नोकर्म हैं वे हमारे भावकर्म और द्रव्यकर्म पर निर्भर करते हैं। द्रव्यकर्म में परिवर्तन के लिये भावकर्म पर ध्यान देना होगा। बदलाव भावों में करना है, परिणामों में करना है क्योंकि उससे ही कर्म बंधते हैं।

हम अपने दुःख का कारण बाहर में खोजते हैं। मान लीजिए कि हम किसी व्यक्ति के कारण दुःखी हैं परन्तु वास्तव में वह व्यक्ति दुःख का कारण नहीं है क्योंकि उस दुःख का कारण हमारे द्रव्य कर्म का उदय है, कोई व्यक्ति हमारी बात नहीं सुनता है। हमारे समझाने पर वह हमें उल्टा जवाब देने लगता है। इसमें उसका कोई दोष नहीं है। उदय हमारा खराब चल रहा है इसलिए वह व्यक्ति हमारी बात नहीं सुन रहा है। द्रव्य कर्म का उदय हमारा खराब है इसलिये वह सामने से जवाब दे रहा है। यदि हमारा उदय बदलेगा तो वह सामने से जवाब नहीं देगा। बल्कि हमारे पैरों में पड़ेगा।

कुछ लोग पूछते हैं कि आप बताओ कि ऐसा क्या करें, जिससे हमारे पाप कर्म का उदय बदल जाए और घर में हमारी चलने लगे। हम कहते हैं कि आप कहाँ-कहाँ चलाओगे। किसी के चलाने से किसी की नहीं चलती है। अपने परिणाम, अपने अभिप्राय, अपनी मान्यता और अपनी दृष्टि को बदलो।

जहाँ हमारी चलती है वहाँ हम चलाते नहीं हैं और जहाँ हमारी बिल्कुल भी नहीं चल सकती वहाँ हम चलाने की सोचते हैं। हमारी परपदार्थों में बिल्कुल भी नहीं चलती है लेकिन हम लगातार वहाँ अपनी चलाने की कोशिश किए जा रहे हैं।

भरत चक्रवर्ती जिनकी छह खण्डों में चलती थी जिनकी आज्ञा पूरा छह खण्ड मानता था लेकिन उनकी अपने पुत्र पर नहीं चली, उनका बेटा उनकी आज्ञा में नहीं था और छह खण्ड में कोई भी उनकी आज्ञा का उल्लघंन करने वाला नहीं था। उनका ही पुत्र समवशरण में विरोध करके चला गया।

हम अपनी बात हर जगह चलाना चाहते हैं पर हम किसके अनुसार चलना चाहते हैं? वास्तव में हम तो भगवान के अनुसार भी चलना नहीं चाहते हैं। बस यहीं सब कुछ गड़बड़ हो जाता है। यदि हमारा अभिप्राय, हमारा चिंतन, जिनेन्द्र देव और जिनवाणी के अनुरूप हो जाए तो फिर कुछ बदलने की आवश्यकता ही नहीं रहे। अगर दृष्टि बदल गई तो सब कुछ ही बदल जाएगा। संयोगों को नहीं बदलना है। दृष्टि को बदलना है।

जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि

यदि किसी का शरीर काला है और वह गोरा होना चाहता है अर्थात् काले रंग को गोरे रंग में बदलना चाहता है। किसी के घुटनों में दर्द हो, तो वह इसको मिटाना चाहता है इसको बदलना चाहता है पर इन सबको बदलने से पहले यदि अपनी दृष्टि बदल ले तो सब कुछ बदल जायेगा। इन सब संयोगों को नहीं बदलना है केवल दृष्टि बदलनी है। दृष्टि बदलने पर सबकुछ बदला हुआ नजर आएगा इसलिए सम्पूर्ण ध्यान और दृष्टि संयोगों पर नहीं, अपितु भावों पर होनी चाहिए।

हम चाह कर भी परिस्थिति को नहीं बदल सकते हैं क्योंकि परिस्थिति नोकर्म पर निर्भर करती हैं लेकिन परिस्थिति के अंदर हम अपनी मन: स्थिति बदल सकते हैं। परिस्थिति नोकर्म है, उस परिस्थिति में हमारी मन:स्थिति कैसी है वह हमारे नियंत्रण में है। यह परिस्थिति द्रव्यकर्म के नियंत्रण (कंट्रोल) में है, लेकिन मन:स्थिति पूर्णत: हमारे नियंत्रण में है। हम मन:स्थिति को तो बदलते नहीं हैं और परिस्थिति को बदलना चाहते हैं। मन बदलेगा तो सबकुछ बदल जाता है, मन प्रसन्न हो तो सब कुछ अच्छा लगता है और मन प्रसन्न नहीं हो तो कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। मन पर कंट्रोल करेंगे तो सबकुछ कंट्रोल में आ जाएगा लेकिन समस्या यह है कि मन ही तो कंट्रोल में नहीं रहता है। कोई कहता है कि समय जब आएगा तब अपने आप मन पर कंट्रोल हो जाएगा लेकिन वह समय कब आएगा और उस समय को कौन लाएगा? सबकुछ हम पर निर्भर करता है यदि हमारा अंतर्मुखी पुरूषार्थ जाग गया तो समय भी आ जाएगा।

सब कुछ निश्चित है तो परिणामों को कैसे कन्ट्रोल करें

जब हम क्रमबद्ध पर्याय की चर्चा करते हैं तो ऐसी शंका होती है कि जब पर्याय पूर्व से निश्चित हो गई है तो फिर हमारे हाथ में क्या है? लेकिन ऐसा नहीं है अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्यायों की लंबी शृंखला चल रही है। वह इस बात को दिखा रही है कि क्या होने वाला है। आप यदि घर से निकले हैं और आपकी दिशा मंदिर की ओर है तो बताइये आगे जो 15 मिनिट बाद का आपका भविष्य है, आपकी जो पर्याय है वह आपको कहाँ ले जाएगी? मंदिर पहुँचना है, यह साफ-साफ दिख रहा है। कोई कहे कि नहीं जो होना होगा वही होगा। अरे 15 मिनिट तक जो क्रम से पर्यायें हैं वह पर्याय जिस दिशा में चल रही है वह यही तो बता रहा

है कि आगे क्या होने वाला है। काम वैसा ही होगा जैसी वह शृंखला चल रही है इसलिये हम जो अभी कर रहे हैं हमारा जो विचार चल रहा है, हमारा जो चिंतन चल रहा है। उससे हमारी गाड़ी का स्टेरिंग जिधर है हमारी गाड़ी भी उस तरफ ही जाएगी। यही क्रमबद्ध है। नरक में जाना यदि क्रमबद्ध है तो अकेला नरक में जाना क्रमबद्ध नहीं है। वरन् नरक में जाने के लिये नरक आयु कर्म बांधना भी निश्चित है। नरक आयु कर्म बांधना यदि निश्चित है तो नरक आयु कर्म बांधने के लिये वैसे भाव, वैसे परिणाम भी होंगे और जैसे परिणाम होंगे वैसा कर्म बंधेगा और जैसा कर्म बंधेगा वैसा फल मिलेगा तो भावों में सुधार कर लो, परिणामों में सुधार कर लो हमें बस यही बदलना है। सब कुछ हमारे नियंत्रण में है।

जितने भी जगत के पदार्थ हैं, जितनी भी घटनाएँ हैं वे सब हमारे नियंत्रण में हैं। अभी तक हमें बताया जा रहा था कि हमारे नियंत्रण में हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है। अब हम कह रहे हैं कि सब कुछ हमारे नियंत्रण में ही है लेकिन बाहर का नियंत्रण नहीं, अंदर का नियंत्रण हमारे हाथ में है। बाहर में परिवर्तन नहीं करना है परिवर्तन अंदर में करना है और अंदर में परिवर्तन कहाँ होगा, कैसे होगा तो **अपरिवर्तनशील तत्त्व को देखो, बस यही परिवर्तन का मार्ग है।**

ये कर्म का प्रकरण भी बहुत मार्मिक प्रकरण है। आखिर ये कर्म भी हमें स्वाधीनता की ओर ले जाते है। यह कर्म की चर्चा 100% इस बात को सिद्ध करती है कि **पर से दृष्टि हटाओ और स्वभाव सम्मुख हो जाओ।**

कर्मों से सीखे

ज्ञानावरणी कर्म हमें यह बतला रहा है कि हमारे ज्ञान का क्षयोपशम कम हो तो दिमाग मत लगाओ उसे ज्ञानावरणी कर्म पर छोड़ दो। शरीर यदि हमारे अनुसार नहीं चल रहा है तो नामकर्म हमें समझा

रहा है कि इसमें परिवर्तन मत कर; क्योंकि शरीर का परिणमन नामकर्म पर निर्भर करता है। शरीर की संरचना- गोरा-काला, मोटा-पतला, लंबा-चौड़ा जो भी होना है, शरीर की शिथिलता, शरीर की मजबूती, दृढ़ता ये सब नामकर्म पर निर्भर करता है तो आप उधर से ध्यान हटाओ; क्योंकि यह शरीर नामकर्म के अनुसार चलेगा जब शरीर नामकर्म के अनुसार चलता है तो इसका सीधा-सादा अर्थ है कि यह मेरे अनुसार नहीं चलता है। तो मैं शरीर की तरफ क्यों देखूँ क्योंकि यह मेरे अनुसार चलता ही नहीं है। हमें देखना है तो सिर्फ आत्मा की ओर परन्तु जहाँ चलती नहीं है वहाँ जबरदस्ती देख रहे हैं और जहाँ चलती है उस ओर देख भी नहीं रहे।

एक बात और कहता हूँ कि ऐसा कौन-सा कार्य है जो हमारे पुण्य के उदय के बिना हो जाए। दुनिया में ऐसा कोई काम नहीं होता जो पुण्य के उदय के बिना हो जावे। हमें बिजनेस चलाना है तो पुण्य के उदय के बिना नहीं चलेगा। यदि आप धन चाहते हैं तो पुण्य के उदय के बिना नहीं मिलेगा। हम परिवार को अपने अनुसार चलाना चाहते हैं तो पुण्य के उदय के बिना नहीं होगा। हम बुद्धिमान होना चाहते हैं, ज्ञानी होना चाहते हैं तो पुण्य के उदय आए बिना नहीं होगा। हम स्वस्थ रहना चाहते हैं तो पुण्य के उदय के बिना नहीं होगा। जो-जो हम अच्छा काम चाहते हैं वह सब पुण्य के उदय में होता है और पाप के उदय में वे सारे काम होते हैं जो हम नहीं चाहते हैं। घोर पापकर्म का उदय हो या तीव्र पापकर्म का उदय हो तो हम उसमें भी अपना काम अर्थात् आत्महित कर सकते हैं।

पापकर्म के उदय में दुनिया का कोई भी काम नहीं होता लेकिन घोर से घोर पापकर्म के उदय में भी दृष्टि स्वभाव सन्मुख हो सकती है।

तीव्र पापकर्म के उदय में हमारा कोई लौकिक काम नहीं होगा लेकिन दृष्टि स्वभाव सन्मुख होने का काम, आत्मानुभव करने का काम, सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का काम, अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति का काम, जीवन में मोक्षमार्ग प्रगट करने का काम यह काम तीव्र पापकर्म के उदय में भी हमारे माध्यम से हो सकता है; जो हम करना नहीं चाहते हैं और जहाँ चलती नहीं है वहाँ जबरदस्ती चलाना चाहते हैं इसलिए हम कहना चाहते हैं कि जहाँ चलती है वहाँ चलाने का प्रयास करें और जहाँ नहीं चलती है वहाँ से दृष्टि हटाएँ। जहाँ-जहाँ द्रव्यकर्म की चलती है वहाँ-वहाँ हमारी नहीं चल सकती है।

जगत में विभिन्नता का वास्तविक कारण : स्व-स्व कर्मोदय

हमारे यहाँ न्याय है, कर्म है। सबका अपना-अपना कर्म है। सबको अपने-अपने कर्म का फल मिलता है। सबकी व्यवस्थाएँ अपने-अपने कर्म के फल अनुसार होती हैं। उदय के अनुसार होती हैं। जगत में जितनी भी विचित्रता दिखती है उन सबका कारण अपना-अपना कर्म है। दुनिया में सभी लोग अलग-अलग क्यों दिखायी देते हैं, उसके पीछे क्या कारण है? सबकी दो आँखे हैं, दो कान हैं, हाथ-पैर, हाथ-पैर की अंगुलियाँ आदि सब बराबर हैं लेकिन एक व्यक्ति का चेहरा किसी दूसरे व्यक्ति के चेहरे से नहीं मिलता है। सबकी शक्ल अलग-अलग है और सबकी अक्ल भी अलग-अलग है। दो लोगों की शक्ल एक जैसी नहीं है। दो लोगों की अक्ल एक जैसी नहीं है। सबकी आँख, कान, नाक उसी जगह पर लगे हैं सबका ढाँचा, उसी तरह का बना हुआ है जहाँ नाक लगनी चाहिए, वहीं नाक है जहाँ आँख लगनी चाहिए वहीं आँख है फिर भी चेहरा सबका अलग-अलग है इसके पीछे अपना-अपना कर्म कारण है।

अनेक प्रकार से कर्मों का उदय आता है। सबके सिर के बाल काले हों तो भी उनके बालों का रंग अलग-अलग होता है। 100 व्यक्तियों ने यदि सफेद कुर्ता पहन रखा हो, तो उन 100 व्यक्तियों के कुर्तो का सफेद रंग भी अलग-अलग होगा। सबका वजन (वेट) अलग-अलग है। सबकी ऊँचाई अलग-अलग है। इन सबके पीछे नामकर्म कारण है। शरीर संरचना बनाने में नामकर्म की भूमिका होती है। सबका मकान एक जैसा नहीं है सबकी सम्पत्ति एक जैसी नहीं है सब का परिवार एक जैसा नहीं है और सबके संयोग भी एक जैसे नहीं हैं। शक्ल अलग होने का कारण नामकर्म की भिन्नता है। अक्ल अलग-अलग है यह ज्ञानावरणी कर्म की भिन्नता को दर्शाता है।

इसका आशय यह है कि एक के ज्ञानावरणी कर्म का उदय दूसरे के ज्ञानावरणी कर्म के उदय से अलग है; होना ही चाहिए; क्योंकि जिसने जैसे कर्म किए हैं उसे वैसा ही फल मिलता है। कौन-सा कर्म करना हमारे हाथ में है? हमारे हाथ में तो केवल भावकर्म है, जिसमें हम बदलाव कर सकते हैं। हमारे भाव कर्म करते ही नवीन द्रव्यकर्म बँध जाता है। भीतर की बहुत सूक्ष्म प्रक्रिया है या हम ऐसा कहें कि बहुत एडवांस कम्प्यूटर लगे हुए हैं, स्वचालित व्यवस्था है कहीं भी, किसी भी हिसाब-किताब में गड़बड़ी नहीं होती है। कहीं फेरबदल नहीं होता है, कहीं मिलावट करने की, रिश्वत की संभावना नहीं होती है। कर्मों में रिश्वत नहीं चलती, सिफारिश भी नहीं चलती है।

यदि पापकर्म का उदय चल रहा है और हम सिफारिश लगाएँ कि पापकर्म का उदय बदल जाए; परन्तु ऐसा नहीं होता है। सारी स्वचालित व्यवस्था है। हमारे द्वारा किए गए कर्मों का फल हमें ही मिलता है और जब फल मिलता है तब उसमें विविधता दिखायी देती हैं, अंतर

दिखायी देता है। यहाँ जितनी भी भिन्नताएँ दिखायी देती हैं उन सबके पीछे द्रव्यकर्म का उदय अथवा द्रव्यकर्म का फल कारण है।

उदाहरणार्थ – एक बच्चे के पास एक तरह की शर्ट है और दूसरे के पास दूसरी तरह की शर्ट है। इन दोनों को अलग–अलग शर्ट मिली हैं इसका कारण द्रव्यकर्म का उदय है। सबके बाल–दाँत एक जैसे नहीं हैं। बालों की साइज एक जैसी नहीं हैं। बालों की चिकनाई एक जैसी नहीं है। नाखून एक जैसे नहीं हैं। हाथ एक जैसे नहीं हैं। हाथों की रेखाएँ एक जैसी नहीं हैं। यह अंतर क्यों है तो कहा कि जिसने जैसा कर्म किया था उसको वैसा फल मिलता है अर्थात् ये सारी परिस्थितियाँ कर्म के फल को दिखाती हैं। भूतकाल को दिखाती हैं। हमारा भूतकालीन जीवन कैसा था, उसको दिखाती हैं।

हम कहते हैं कि हमने यह काम किया, हमने इतना कमाया, हमने यह व्यापार किया लेकिन दुनिया में तो कई व्यक्ति व्यापार करते हैं, कईयों को नुकसान हो जाता है। हमें इस धोखे में नहीं रहना चाहिए कि हमने कमाया है क्योंकि बाहर जितनी भी स्थिति बन रही है। वह हमारा नहीं बल्कि द्रव्यकर्म का कार्य है।

यह व्यापार नोकर्म है। द्रव्यकर्म का नौकर है। नोकर्म का द्रव्यकर्म के साथ में **कांन्ट्रेक्ट** है इसने द्रव्यकर्म के साथ जो **डील** की है, जो फैसला किया है कि कब तक यह कर्म रहेगा, कैसी **क्वालिटी** वाला होगा ये सारी **डीलिंग** द्रव्यकर्म के साथ में हुई है। यह द्रव्यकर्म अभी का नहीं है यह पूर्व जन्म का भी हो सकता है। पिछले जन्म का कर्म जिसके कारण से किसी बालक ने जन्म लिया और उसका जन्म फुटपाथ पर हुआ। एक बच्चे ने जैसे ही जन्म लिया और उसकी माता

की मृत्यु हो गई। एक बच्चे ने जन्म लिया तब खाने-पीने के लिये कुछ नहीं था। एक ने जन्म लिया तो उसको सोने की चम्मच से पानी पिलाते थे, यह अंतर दर्शाता है कि उसने पिछले जन्म में कोई ऐसा काम किया था, जिसका फल उसे आज मिल रहा है।

हमारा जीवन कब से और कहाँ तक?

पुनर्जन्म की सिद्धि

कर्म सिद्धांत को स्वीकार करने पर पुनर्जन्म सिद्ध होता है। पुनर्जन्म के सिद्धांत में अनादि-अनंत भगवान का स्वरूप देखने को मिलता है। पुनर्जन्म का अर्थ है कि भूतकाल में भी यह जीव था। भूतकाल में इस जीव का अस्तित्व था, अर्थात् यह जीव मरता नहीं है। अगले जन्म में, अगले शरीर में स्थानांतरित (ट्रांसफर) होता है। अब इसके बाद अगले जन्म में चला जायेगा और वहाँ जब जन्म लेगा तो वहाँ भी यह जीव मरेगा नहीं, फिर कहीं और चला जायेगा। पिछली दुनिया से हम आये थे, उससे पहले भी हम कहीं से आये थे, उसके पहले भी कहीं और थे। इस प्रकार जन्म पर जन्म लेते रहे। प्रश्न होता है कि कब से जन्म हो रहा है? तो कहा है कि अनादि काल से बार-बार जन्म हो रहा है।

कई लोग कहते हैं कि जोड़ियाँ ऊपर से बन कर आती है। इसका अर्थ यह हुआ कि दोनों व्यक्ति कहीं से आये हैं। वैज्ञानिकों के द्वारा शोध किया जा चुका है। 200 से अधिक घटनाएँ ऐसी प्राप्त हुई हैं जिसमें 2 साल के बच्चे ने बोलना शुरू कर दिया और अजीबो-गरीब बातें बोलने लगा। अजीब भाषा में बात करने लगा। जब खोज की गई तो पता चला कि हजारों किलोमीटर दूर वो जगह थी जहाँ का वह रहने वाला था।

वहाँ जाकर देखा तो पता चला कि यह बच्चा वहाँ पूर्व जन्म में

नगर सेठ था। उस 2-3 साल के बच्चे ने ऐसी बातें बता दीं जो किसी को पता न थीं, इससे सिद्ध होता है कि पिछला जन्म होता है । कर्म सिद्धांत को मानने पर पुनर्जन्म सिद्ध हो जाता है और पुनर्जन्म सिद्ध होने पर आत्मा का अनादि-अनंतपना सिद्ध हो जाता है। यह आत्मा अनादि काल से है और अनंत काल तक रहने वाला है।

अत: जितनी भी परिस्थितियाँ बन रही हैं वे द्रव्यकर्म के आधार पर बन रही हैं और द्रव्य कर्म भावकर्म के आधार पर कार्य कर रहा है एवं भावकर्म हमारे नियंत्रण में है। जैसा भाव करेंगे वैसा फल मिलेगा। अच्छे कर्म करेंगे तो अच्छा कर्म बंधेगा, जिससे अच्छा फल मिलेगा। यह जो चक्र चल रहा है, इसे तोड़ने के लिये भावों को जीतना होगा।

शुभ: पुण्यस्य अशुभ:पापस्य।।3।।

यदि शुभ प्रवृत्तियाँ होंगी तो पुण्यकर्म का आस्रव होगा और देह-मन-वाणी की अशुभ प्रवृत्तियाँ होंगी तो पापकर्म का आस्रव होगा। यह सारी व्यवस्था स्वचालित है। इधर भाव हुये और उधर तदनुरूप कर्मों का आस्रव-बंध होता है।

दुनिया में किसी ने अपराध किया तो उसे सज़ा मिलने में समय लगता है। 1 वर्ष, 2 वर्ष, छह माह या फिर जब पकड़ में आयेगा तब। लेकिन कर्मों में उधार की सुविधा नहीं है। कई व्यापारिक संस्थानों पर लिखा होता है। '**आज नगद कल उधार**' ऐसा लिखा होने के बाद भी उधारी तो चलती है । क्योंकि उधारी के बिना तो व्यापार चलता ही नहीं है लेकिन कर्मों में उधारी का कोई काम नहीं है। कर्मों में तो तुरंत हिसाब होता है। कर्म का फल तत्काल मिलता है और धर्म का फल भी तत्काल मिलता है जैसे परिणाम किये तुरंत उसका फल मिल गया।

हाँ, कर्म का फल भविष्य में मिलेगा अर्थात् बंधने के बाद जो फल मिलेगा वह उदय में आने पर मिलेगा हम उसकी बात नहीं कर रहे हैं। हम तो अभी की बात कर रहे हैं। कर्म किया, उधर तुरंत बंध गया। इसलिए हम किसी के प्रति बुरा सोचेंगे तो उसको भी तुरंत हमारे प्रति बुरा भाव आ जायेगा और हमारे मन में दूसरे के प्रति अच्छा भाव है तो दूसरे के मन में भी हमारे प्रति अच्छा भाव होगा।

हमारे भावों के अनुरूप दूसरों के भाव होते हैं

एक बूढ़ी अम्मा थीं। गाँव में रहती थीं। एक दिन वह अपनी लड़की के साथ शहर जा रही थीं। 22 साल की लड़की उनके साथ थी। वह अपना सामान पोटली में रखकर माथे पर ले जा रही थी। पैदल जा रही थी। रास्ते में उसे एक घुड़सवार आदमी मिला। बूढ़ी अम्मा ने उस आदमी से कहा कि थोड़ी हमारी मदद करोगे। इस लड़की को घोड़े पर बैठा लो और यह सामान भी आगे तक पहुँचा दो। उस घुड़सवार ने मना कर दिया और आगे बढ़ गया। पीछे से अम्मा ने सोचा अरे! मैं बिना विचार किये एक अनजान व्यक्ति के साथ में अपनी बेटी और सारा सामान दे रही थी और वह घोड़ा लेकर कहीं दौड़ जाता तो मैं बूढ़ी कहाँ ढूँढती? मैं कितनी बेवकूफ हूँ?

उधर घुड़सवार ने सोचा कि मैं भी कितना पागल हूँ। बैठे बिठाए सामान मिल रहा था और साथ में लड़की भी मिल रही थी, वह बुढ़िया मुझको कहाँ ढूंढती। वह मेरा क्या बिगाड़ लेती, सामान और लड़की को ले जाता। उसने सोचा अभी भी क्या बिगड़ा है कितना आगे आया हूँ वापस घोड़ा घुमाकर ले गया और अम्मा से कहा तुम मुझसे कुछ कह रही थीं, क्या कह रही थीं? अम्मा ने कहा बेटा जो तुमसे कह गया वह

मुझसे भी कह गया। तुम्हारे मन में जब तक खोटा भाव नहीं था तब तक मेरे मन में भी ऐसा भाव नहीं आया था। तुम्हारे मन में खोटा भाव आ गया तो मेरे मन में भी तुरंत यह भाव आ गया कि ऐसा हो जाता तो क्या होता, इसलिए कहा गया है कि भावों का तुरंत असर पड़ता है। इधर जैसे भाव होंगे उधर वैसे भाव बन जायेंगे।

फल तो परिणामों का, भावों का लगता है । इसलिए अपने भावों को सम्भालो, अपने परिणामों को सम्भालो। हर समय सावधान रहो कि अपने परिणाम तो नहीं बिगड़ रहे हैं । परिस्थितियों से प्रभावित मत होओ; नोकर्म परिस्थितियाँ हैं और भावकर्म उन परिस्थितियों से प्रभावित होना है। ये जो भावकर्म हैं वे नोकर्म से कैसे प्रभावित हुए हैं, उस पर हमारा आगे का भविष्य निर्भर करेगा। उससे द्रव्यकर्म बंधेगा। इन संयोग रूप जो नोकर्म हैं उनसे निर्मित जो परिस्थितियाँ हैं। उसमें हमारी मन:स्थिति यदि नियंत्रण में है, तो हमारी गाड़ी सही दिशा में चल रही है, और परिस्थिति से यदि मन:स्थिति बिगड़ रही है, भावकर्म बिगड़ रहे हैं तो इसका आशय यह है कि आगे का भविष्य बिगड़ने वाला है। इसप्रकार हमारा वर्तमान कैसा है उसे देखकर बताया जा सकता है कि हमारा भविष्य कैसा होगा।

हिन्दी में एक कहावत है कि **'पूत के पाँव पालने में ही दिख जाते हैं।'** इसका आशय यह है कि हमने बचपन में जैसे संस्कार उसमें देखे हैं उससे पता लग जाता है कि उसका भविष्य कैसा होने वाला है। क्योंकि वह भविष्य वर्तमान पर निर्भर करता है। यदि वर्तमान में अशुभ भाव हैं तो अशुभ का बंधन है और यदि शुभभाव हैं तो शुभ का बंधन है। **'शुभः पुण्यस्य अशुभः पापस्यः।'**

कर्म कैसे आते हैं, कैसे बंधते हैं? कोई व्यक्ति बैठा हुआ है और उसने भाव, विचार अथवा परिणाम किए; इनके होने पर चारों ओर वातावरण में जो धूल, मिट्टी की तरह कार्मण वर्गणाएँ थीं अर्थात् कर्म रूप परिणमित होने योग्य जो पुद्गल थे, वे पुद्गल परमाणु आत्मा के पास खिंचे चले आते हैं। इसप्रकार जो पुद्गल आते हैं उन्हें आस्रव कहा जाता है। यहाँ दो स्थितियाँ हो सकती हैं, पहली - कर्म परमाणु आत्मा को छू कर निकल जाएँ और दूसरी स्थिति -कर्म परमाणु आत्मा से चिपक जाएँ।

आस्रव का स्वरूप

ये सारी बातें कषायों पर निर्भर करती हैं। **सकषायाकषाययो: सांपरायिकेर्यापथयो:।।4।।**

कर्म कैसे बंधेंगे इसमें सकषाय और अकषाय दो तरह की स्थितियाँ होंगी या तो कषाय के भाव होंगे या कषाय के भाव नहीं होंगे। इससे आस्रव दो प्रकार का होता है। साम्परायिक आस्रव और ईर्यापथ आस्रव। **कर्मों के आने को आस्रव कहते हैं।**

यहाँ प्रश्न होता है कि कर्म कितने प्रकार से आते हैं? तो बताया कि दो तरह से कर्मों का आस्रव होता है। पहला - साम्परायिक आस्रव और दूसरा ईर्यापथ आस्रव। साम्परायिक नामक जो आस्रव है वह कषायों के कारण होता है। यह जीव कषाय करता है, राग-द्वेष करता है, विकारीभाव करता है, मनमुटाव करता है, अच्छा बुरा सोचता है, लड़ाई-झगड़े का भाव करता है, पूजा का भाव करता है, भक्ति का भाव करता है, नाचने-गाने का भाव करता है, इनसे साम्परायिक आस्रव होता है।

साम्परायिक आस्रव लम्बे समय के लिये होता हैं। कर्म आते है वे लंबे समय के लिए आत्मा के साथ बंध जाते हैं, यह साम्परायिक आस्रव है। संक्षेप में कह सकते हैं कि साम्परायिक आस्रव में जो कर्म आते हैं वे लम्बे समय तक रहेंगे। ऐसा नहीं है कि कर्म आए और आने के बाद छूट गए।

किसी दीवार पर यदि धूल फेंकी जाए तो वह धूल दीवार से गिरेगी या चिपकेगी? यह इस बात पर निर्भर करता है कि दीवार चिकनी है या सूखी है। यदि दीवार चिकनी होगी तो धूल चिपक जायेगी और दीवार सूखी होगी तो धूल स्पर्शित होकर गिर जायेगी। यदि आत्मा की दीवार पर राग-द्वेष और कषाय की चिकनाई है तो जो आस्रव होगा वह चिपकेगा और यदि राग-द्वेष कषाय की चिकनाई नहीं है तो जो कर्म परमाणु आयेंगे वे छूकर गिर जायेंगे। जो चिपकने की क्रिया है, वह साम्परायिक आस्रव कहलाती है। छूकर गिर जाने की क्रिया ईर्यापथ आस्रव कहलाती है। साम्परायिक लंबे समय तक चलने वाला आस्रव है और ईर्यापथ एक समय के लिए होने वाला आस्रव है। साम्परायिक आस्रव कषायों के कारण होता है और ईर्यापथ आस्रव जिनके कषाय खत्म हो गईं हैं उनके होता है। मतलब पहले गुणस्थान से लेकर दसवें गुणस्थान तक साम्परायिक आस्रव होता है। 11वे, 12वे व 13वे गुणस्थानों में जो आस्रव होता है, उसे ईर्यापथ आस्रव कहते हैं; क्योंकि इन गुणस्थानवर्ती जीवों के कषाय नहीं हैं। सूत्र है- **सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः।** इस सूत्र में चार शब्द हैं स कषाय अर्थात् कषाय सहित वाले जीवों को जो आस्रव होता है वह साम्परायिक आस्रव है और अकषायी जीवों के जो आस्रव होता है वह ईर्यापथ आस्रव है। किसके कौनसा आस्रव होगा यह इस सूत्र में बताया है।

कर्मों का आस्रव प्रति समय होता है

अब प्रश्न होता है कि इन आस्रवों के होने का क्या कारण है? ये आस्रव कब-कब होते हैं? कर्म कब बंधता है। जब भी हम कषाय करते हैं तब कर्मों का बंधन होता है। यह एक मानवीय स्वभाव है कि जब भी कोई कर्म की बात करेगा तो ऐसा प्रतीत होता है कि हम जब खोटा काम करेंगे तब ही कर्म बंधेगा। कोई गलत काम करेंगे तभी कर्म बंधेगा। यह सोच प्राय: सभी व्यक्तियों में पायी जाती है कि हमने कोई गलत काम किया नहीं है इसलिए हमें कर्म क्यों बंधेगा? लेकिन जैन दर्शन में स्पष्ट रूप से कहा है कि गलत करो या सही करो हर समय कर्म बंध रहे हैं। यह कर्म बंधन की प्रक्रिया नॉन-स्टॉप चल रही है। सोते-जागते, खाते-पीते, उठते-बैठते, नहाते-धोते, ये कर्म हर काम करते समय बंध रहे हैं।

तब हमें जिज्ञासा होती है कि कोई व्यक्ति बेहोशी की अवस्था में हो, तो क्या तब भी कर्म बंधते हैं इसका समाधान यह है कि जब व्यक्ति बेहोश है तब तो कर्म बंध ही रहे हैं; परन्तु कोई व्यक्ति कौमा में भी हो तब भी कर्म बंध रहे हैं। इसप्रकार कर्म तो हर समय बंधते ही रहते हैं, इसलिए हर समय सावधान रहने की बात कही जा रही है। हम सोच रहे हैं कि हमें कर्म क्यों बंधेंगे जबकि हमने तो कुछ किया ही नहीं। जिस समय हम ऐसा सोच रहे हैं उस समय भी कर्म बंधने की प्रक्रिया चल ही रही है। हमारे दिमाग में विचार चल रहा है इसका मतलब है कि कर्म बंधने की क्रिया निरंतर चल रही है। दिमाग में जो भी चलेगा उससे कर्म बंधेगा क्योंकि कर्म बंधने की क्रिया चौबीसों घंटे अनवरत चल रही है। अब यहाँ कर्म बंधन के कारण बता रहे हैं।

कर्म का बंधन आखिर किससे?

साम्परायिक आस्रव के 39 भेद बतलाये हैं। '**इन्द्रिय-कषायाव्रत-क्रियाः पञ्चचतुः पञ्च-पञ्चविंशति संख्याः पूर्वस्य भेदाः।।5।।**

कर्म कैसे बंधते है तो कहा है- इन्द्रिय अर्थात् या तो आप किसी को देख रहे होते हैं या सुन रहे होते हैं या बोल रहे होते हैं या आप चुप बैठे हुए होते हैं या स्पर्शन इन्द्रिय का अनुभव कर रहे होते हैं। अर्थात् पाँच इन्द्रियाँ (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण) इनसे जुड़ने से कर्म बंध रहे हैं। इन्द्रियों के विषयभोगों को भोगने से निरंतर कर्म का आस्रव हो रहा है। बिना रूकावट के सोते समय भी आप डल्लप के गद्दे का आनंद ले रहे हैं भले ही आपके यहाँ ए.सी. नहीं हो तो भी स्पर्शन इन्द्रिय का उपभोग चालू है। ए.सी. नहीं है, पंखे नहीं है तब भी हवा तो चलती ही है प्राकृतिक हवा का अनुभव करते हैं तो स्पर्शन इन्द्रिय का भोग कर रहे हैं। व्यजंनों को खाते समय रसना इन्द्रिय का भोग भी हो ही रहा है। इतने खाद्य पदार्थ हैं, इतने व्यंजन हैं कि 365 दिन भी अलग-अलग पकवान बनें तो भी कम न पड़ें।

इन्द्रिय विषय के बाद कहा है- कषाय। हम प्रति समय कषाय-भाव को लिए हुए रहते हैं। कषाय की बात जब होती है तो लोगों को लगता है कि क्रोध करना कषाय है। हमने ऐसी मान्यता बना ली है कि कोई व्यक्ति गुस्सा कर रहा है तो वह व्यक्ति कषायी है और दूसरा व्यक्ति शांत है, गुस्सा नहीं करता है तो हमें लगता है वह कषाय से रहित है।

कोई शांत है इसका आशय यह तो नहीं कि वह वीतरागी बन गया है भगवान बन गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि हमें क्रोध ही कषाय दिखायी देती है। मान भी तो कषाय है, मायाचार भी तो कषाय है। लोभ

भी तो कषाय है शांति से दुकान पर बैठकर जब कोई व्यापार करता है तब क्या उसमें कषाय नहीं है? या सिर्फ लड़ाई–झगड़ा ही कषाय है? कषाय शब्द सुनकर हमें लगता है कि जो लड़ाई–झगड़ा कर रहा है वह कषायी है और जो लड़ाई झगड़ा नहीं करता है वह अकषायी है। शास्त्र कह रहे हैं कि कषाय चार प्रकार की होती हैं, जिससे निरंतर कर्म बंध रहे हैं और हर समय कषाय के कारण, इन्द्रियों के कारण कर्म बंध रहे हैं।

कोई व्यक्ति बहुत प्रेम से बोल रहा है, शांति से बोल रहा है तो क्या उसमें कषाय नहीं है? हमें ऐसा लगता है कि उसमें कषाय नहीं है। उदाहरण के लिये कोई व्यक्ति मेहमान के रूप में आपके घर आया। वह तीन दिन के लिए आपके घर पर ठहरता है। आपके स्वाध्याय/प्रवचन का समय हो गया और आपको मंदिर जाना है; लेकिन घर में मेहमान आए हुए हैं। आपने उनसे भी निवेदन किया कि स्वाध्याय/प्रवचन का समय है, तो हम लोग मंदिर चलें। मेहमान यदि पलटकर यह कहने लगे कि हम इतने वर्षों बाद तो आपके यहाँ आए हैं वह भी तीन दिन के लिए और आपको इन दिनों में भी धर्म ही धर्म दिखता है, बाद में सुन लेना प्रवचन। पंडितजी कहाँ चले जायेंगे। मंदिर कहाँ जा रहा है, लेकिन हम तो चले जायेंगे। आप तो साल भर ही जाते हो। आपने कहा ठीक है, नहीं जाते हैं। उस व्यक्ति के अंदर हमें बहुत कषाय दिखाई देती है, हम सोचते हैं कि यह व्यक्ति बहुत कषायी है जो हमें धर्म करने से भी रोक रहा है।

अब दूसरा व्यक्ति मेहमान के रूप में आपके घर आया और आपने उससे भी यही कहा कि यह स्वाध्याय/प्रवचन का समय है हम लोग मंदिर चलते हैं। उसने कहा, देखो मेरा तो प्रवचन/मंदिर में मन नहीं लगता। आपको जाना है तो आप चले जाओ और मुझे टी.वी. का रिमोट

दे जाओ; आप आराम से होकर आओ। उसने बड़ी शांति से, शालीनता से आपको जाने की इजाज़त दे दी। अब आप बताइए कि वह कषायी है या नहीं। जो शांति से बैठकर टी.वी. देखना चाहता है वह कषायी है या नहीं। यदि उसे कषाय हैं तो मंद कषाय है या तीव्र कषाय है। एक मेहमान जिसने गुस्सा करके जवाब दिया वह तीव्र कषायी था एक व्यक्ति ने बहुत प्रेम से, नम्रता से कहा आप जाकर आ जाओ, मुझे बस रिमोट दे जाओ, तब तक मैं टीवी देख लूंगा। ऐसा वह मुस्कुराकर बोल रहा है, ऐसे व्याक्ति को हम मंद कषायी समझते हैं।

जिनवाणी हमें बता रही है कि जिसके चेहरे पर मुस्कुराहट दिखायी दे रही है वह व्यक्ति भी तीव्र कषायी है क्योंकि जिनवाणी सुनने का भाव नहीं आना यह तीव्र कषाय को प्रदर्शित करता है। हमें लगता है शांति से बोल रहा है, मुस्कुरा कर बोल रहा है, प्रेम से बोल रहा है इसलिए मंद कषायी है लेकिन ऐसा नहीं है, इन लक्षणों को देखकर आप यह नहीं कह सकते हैं कि इसमें कषाय नहीं है; क्योंकि जिसे जिनवाणी नहीं सुहाती है, तत्त्व की चर्चा नहीं सुहाती है, धर्म सुनने का भाव नहीं आता है, धर्म करने का भाव नहीं आता है तो निश्चित रूप से उसमें तीव्र कषाय है। इसे ही तीव्र कषाय कहते हैं। आत्मा की विराधना तीव्र कषाय है। विराधना करना हमें कषाय नहीं लगता। हमें तो कितने तीव्र क्रोध में शब्द बोला गया है, वह तीव्र कषायी दिखता है।

ऐसे अकषायी व्यक्ति तो हमें दुनिया में बहुत मिल जायेंगे जो गुस्सा नहीं करते हैं। बड़े से बड़ा संकट आ जाने पर भी जिन लोगों के चेहरे पर शिकन नहीं दिखाई देती है ऐसे लोग भी दुनिया में बहुत मिलेंगे। तो क्या वे व्यक्ति धर्मात्मा हैं या वीतरागी हो गये हैं? लेकिन ऐसा नहीं है इस क्रोध के अभाव का नाम वीतरागता नहीं है। इसका नाम मंद कषाय भी

नहीं है। कषायी तो वह है जिसे आत्मा नहीं सुहाती। आत्मा की चर्चा जिसे बेरस लगती है। उसे लगता है; आप आत्मा को ही ज्यादा महत्त्व देने लग गये हैं। छोड़ो यह आत्मा-फात्मा की बातें। उसे यह नहीं मालूम की आत्मा यानि किसी और की नहीं, बल्कि मेरी ही बात चल रही है। यह बात यदि किसी व्यक्ति को अच्छी नहीं लगती है इसका मतलब वह तीव्र कषायी है; यह जिनवाणी कह रही है।

पाँच इन्द्रियों के विषय, कषाय, अव्रत और क्रिया ये साम्परायिक आस्रव के चार कारण बताये हैं, इसके विस्तार में इन्द्रियों के पाँच प्रकार हो गये, फिर चार कषाय - क्रोध, मान, माया और लोभ। पाँच अव्रत अर्थात् हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, कुशील सेवन और परिग्रह संचय करना। कुछ व्यक्तियों को यह हिंसा, झूठ, चोरी और कुशील तो पाप लगते है लेकिन यह पांचवा परिग्रह, पाप नज़र नहीं आता। जो हिंसा करता है, वह हमें पापी नज़र आता है। जो झूठ बोलता है, वह पापी दिखता है; लेकिन जो परिग्रह संचय करता है वह तो हमें पापी ही नहीं लगता है। कमाने का भाव भी पाप भाव है। यह आस्रव का कारण है और क्रिया के 53 प्रकार हैं। इस तरह से यहाँ साम्परायिक आस्रव के भेद-प्रभेद बता दिए।

इन्द्रिय, कषाय, अव्रत और क्रिया, इन सब के भेद बता दिए, फिर उसी सूत्र में कहा **पूर्वस्य भेदाः**। ये साम्परायिक आस्रव के भेद हैं। लंबे समय के लिये यह कर्म बंध जाता है। कर्म भी अलग-अलग तरह से बंध रहे हैं क्योंकि इन्द्रिय विषय अलग-अलग हैं और उनमें हो रहे राग-द्वेष की तीव्रता भी अलग-अलग प्रकार की है। किसके प्रति कितनी आसक्ति है, किसके प्रति कितना जुड़ाव है इन सब के आधार

पर कर्म बंधता है। इस तरह कर्म बंधन के कई भेद हो जायेंगे। सब भेदों की चर्चा आगे के सूत्रों में करने वाले हैं।

अल्पाधिक बंधन के कारण

तीव्रमंदज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेष:।।6।।

पहला तीव्रभाव, दूसरा मंदभाव, तीसरा ज्ञात भाव और चौथा अज्ञात भाव। तीव्रभाव अर्थात् भावों में बहुत तीव्रता है। मंदभाव अर्थात् किसी कार्य को करने में भावों में मंदता है। उदाहरण के लिये दो व्यक्तियों ने पूजन की तो क्या दोनों को एक जैसा कर्म बंधेगा? एक के भावों में तीव्रता थी और दूसरे के भावों में मंदता थी। तीव्रता की स्थिति में अलग तरह से कर्म बंधन होगा और मंद भावों की दशा में अलग तरह से कर्म का आस्रव-बंध होगा।

हम जिनवाणी सुनने गए और सुनते समय हमारा जो उत्साह है उस पर निर्भर करेगा कि कैसे कर्म का आस्रव हो रहा है। यदि सुनने का भाव है तो पुण्य का आस्रव होगा, क्योंकि जिनवाणी सुनना पुण्य भाव है लेकिन सुनते समय जो हमारे भावों में तीव्रता है, सुनने का तीव्र उत्साह है अथवा कोई व्यक्ति बिना उत्साह के सुनता है, जबरदस्ती सुनता है; इस तरह दोनों व्यक्ति के भावों की दशा में भिन्नता है। काम तो दोनों ही सुनने का कर रहे हैं लेकिन दोनों के भावों में अंतर है। इसप्रकार तीव्रता के आधार पर किया गया कार्य और मंदता के आधार पर किया गया कार्य अलग-अलग परिणाम लाता है इसलिए कहा है कि भावों का कर्म पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

भावों का प्रभाव भोजन पर भी दिखायी देता है। भावों से भोजन का स्वाद कई गुना बढ़ जाता है यदि भोजन बनाते समय बनाने वाले

के भाव अच्छे होंगे; तो भोजन भी स्वादिष्ट बनेगा। कहा भी जाता है कि भावों का मिश्रण खाने में तुरंत हो जाता है और यदि भाव दूषित होते हैं तो भोजन भी दूषित हो जाता है।

उसके बाद आता है ज्ञात और अज्ञात भाव। इसका भी कर्म बंधन पर असर पड़ता है हमने कोई काम जानबूझकर किया। कोई काम अनजाने में हो गया। ज्ञात भाव अर्थात् हमारे द्वारा जानबूझकर किसी जीव की हिंसा हुई और दूसरी तरफ हम सावधानी से चल रहे थे और पैर के नीचे कोई जीव आ गया तो यह अनजाने में होने वाली हिंसा है। जाने या अनजाने में हुई हिंसा; दोनों से आस्रव में अंतर पड़ेगा। हम सड़क पर चल रहे हों और पैर से एक भी जीव नहीं मरा, तो भी हिंसा का पाप लग रहा है, क्योंकि हम बिना सावधानी से, बिना सजगता से चल रहे हैं। यह पाप, असावधानी का फल है, प्रमाद का फल है।

समयसार के बंध अधिकार में इस तरह की गाथा दी हुई है, मूल गाथा में इस प्रकार की चर्चा है–

मारो ना मारो जीव को, हो बंध अध्यवसान से।
यह बंध का संक्षेप है तुम जान लो परमार्थ से।।

एक मुनिराज ऐसे हैं जो चार हाथ ज़मीन देखकर चल रहे हैं और कोई जीव उड़ता हुआ उनके पैर के नीचे आ गया और मरण को प्राप्त हो गया; फिर भी उन्हें हिंसा का पाप नहीं लगता, क्योंकि वे सावधानीपूर्वक चल रहे हैं। इसका आशय यह है कि प्राणी मर रहा है अथवा नहीं मर रहा है उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है वह तो जड़ की क्रिया है। क्रियाओं से बंध नहीं होता, भावों से बंध होता है। हमारी क्रिया कैसी हो रही है इससे कोई असर नहीं पड़ता है। हम पूजन कर

रहे हों या नहीं कर रहे हों, हम मंदिर जा रहे हों या नहीं जा रहे हों; लेकिन हमारे भाव कैसे हैं, उसका फल मिलेगा। फल तो भावों/परिणामों का लगता है। मान लीजिए हम मंदिर/स्वाध्याय में बैठे हों; लेकिन 'Present body absent mind शरीर से तो मंदिर में मौजूद हैं; लेकिन मन हमारा कहीं और है। प्रभु की ओर हमारा ध्यान नहीं है। तो मन्दिर में बैठे होने पर भी पापबंध ही होगा।

अध्यात्म की चर्चा करते समय दो वाक्य कहते हैं मैं कहाँ और मैं कैसा? जहाँ मेरा उपयोग मैं वहाँ, जैसा मेरा उपयोग मैं वैसा और मेरा उपयोग यदि निर्मल है तो मैं भी निर्मल हूँ। मेरे उपयोग में यदि सच्चाई है, ईमानदारी है, अच्छाई है तो मैं सच्चा हूँ, अच्छा हूँ, ईमानदार हूँ और यदि मेरे उपयोग में बेईमानी है तो मैं बेईमान हूँ।

तीव्रभाव, मंदभाव, ज्ञातभाव और अज्ञातभाव उसके आगे कहा **अधिकरण** कि उन भावों का आधार क्या है? तीव्रता या मंदता जो हुई, ज्ञात और अज्ञातपना जो हुआ वह किसके आधार पर हुआ। हमारी तीव्रता स्वाध्याय सुनने की थी या न्यूज़ सुनने की थी। अधिकरण क्या है, इसका आधार क्या है। हमारी जो तीव्रता थी वह जिनमंदिर आने की थी या टीवी देखने की थी। तीव्रता देवदर्शन की थी या दूरदर्शन की। इस प्रकार तीव्रता या मंदता किन कार्यों के प्रति है। ज्ञातपना अथवा अज्ञातपना किसमें है वह अधिकरण पर निर्भर करेगा।

फिर कहा है **वीर्य विशेष** अर्थात् शक्ति (पॉवर)। कितनी पॉवर से कोई काम किया गया। द्रव्य विशेषताओं से साम्परायिक आस्रव में विशेषता आती है। इस आस्रव में बहुत तरह की स्थितियाँ हो जाती है। कभी कहीं कोई भूकंप आ जाता है या एक्सीडेंट हो जाता है तो अनेक

लोग मरण को प्राप्त होते हैं, बाढ़, तूफान, भू-स्खलन जैसी कई आकस्मिक प्राकृतिक आपदाएँ आने पर बहुत अधिक संख्या में एक साथ लोग मारे जाते है तो जिज्ञासा होती है कि उन सब व्यक्तियों के कौन-से कर्म का उदय आया; जो एक साथ सब मृत्यु को प्राप्त हो गए।

कहीं ट्रेन एक्सीडेंट हुआ और उसमें 2000 लोग मरण को प्राप्त हो गए। किसी जगह भूकम्प आया और 15 हजार लोग एक साथ मरण को प्राप्त हो गए। तो प्रश्न खड़ा होता है कि एक साथ इन सब लोगों को मरना था तो क्या सबके एक जैसे कर्म का उदय था। इसमें यदि आपको लग रहा है कि एक साथ सबको फल मिला; परन्तु यह बात सही नहीं है और दूसरा सबको एक जैसा फल मिला है यह बात भी सही नहीं है। यदि ट्रेन एक्सीडेंट हुआ तो उसमें से किसी की ५ मिनिट पहले मृत्यु हुई, किसी की 15 मिनिट बाद मृत्यु हुई, किसी की 2 घंटे तड़फने के बाद मृत्यु हुई, किसी की 15 दिन तड़फने के बाद मृत्यु हुई, किसी की गर्दन कट जाने से मृत्यु हुई, किसी के सिर में लोहे का सरिया घुस गया जिसके कारण उसकी मृत्यु हुई; इस तरह सबकी अलग-अलग परिस्थितियाँ हैं। इसलिए एक जैसा उदय तो नहीं कहा जा सकता है और सबकी तकलीफ भी अलग-अलग हैं। उस एक ही एक्सीडेंट में सब लोग अलग-अलग पीड़ा भोग रहे हैं। हमने तो स्थूल दृष्टि से कह दिया कि भूकम्प आया और एक साथ 15 हजार लोग मर गये लेकिन सब साथ ही मरण को प्राप्त नहीं हुए अपितु सबके मरने का टाइम अलग-अलग है।

एक सेकण्ड में संख्यात हजार कोड़ा-कोड़ी आवलियाँ होती है। एक आवली में जघन्ययुक्त असंख्यात समय होते हैं। इस प्रकार एक सेकण्ड में जघन्ययुक्त असंख्यात समय होते हैं, यह बहुत लंबा

कालखण्ड है। इस तरह कई सारे लोग एक सेकण्ड के भीतर ही मरें तो भी समय अलग–अलग हो सकता है।

दूसरा अंतर परिणामों का होगा। सबके मृत्यु के समय के परिणाम अलग–अलग होंगे और सब मरकर परिणामों के हिसाब से अलग–अलग गतियों में जायेंगे इसलिए कहा जा सकता है कि सब एक साथ नहीं मरते। फिर जिज्ञासा होती है कि समय अलग–अलग रहा होगा पर मरने वाले व्यक्तियों का निमित्त तो एक ही रहा। एक ही ट्रेन एक्सीडेंट में इतने सारे लोग मर गये। मृत्यु का समय सबका अलग रहा है, यह मान सकते हैं लेकिन सबको उसी दिन उसी ट्रेन में बैठना था और मृत्यु को प्राप्त करना था यह कौन–से कर्म का उदय था तो इसका समाधान यह है कि सब लोग एक साथ एक जैसा कर्म भी बांध लेते हैं। जैसे– कई लोग तीव्र उत्साह से एक साथ प्रवचन सुन रहे हैं तो इसका अर्थ है कि स्थूल रूप से सबको एक जैसा कर्म ही बंध रहा होगा चाहे भाव अलग–अलग रहे होंगे लेकिन सुनने के भाव से सब बैठे हैं इसका आशय सबको लगभग एक जैसा ही कर्म बंध रहा है।

बड़ी–बड़ी सभाओं में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में 10 हजार लोग एक साथ एक उद्देश्य से शामिल हुए। स्टेज पर जन्म कल्याणक का दृश्य दिखाया जा रहा है, सौधर्मेन्द्र का सिंहासन कंपायमान हुआ और पूरी सभा में जय–जयकार होने लगी तो सबके भाव एक जैसे होते हैं। इसका अर्थ 10 हजार लोगों ने एक जैसा कर्म बांधा। मोटे–मोटे रूप से/स्थूल दृष्टि से यदि तीव्र–मंदता के अर्थ में बात करेंगे तो सबके कर्म में अंतर पड़ेगा। इसीप्रकार यदि ट्रेन एक्सीडेंट हुआ तो सबने किसी समय वैसे कर्म बाँधे थे इसलिए एक साथ सब मृत्यु को प्राप्त हुए।

जैसे हमने पंचकल्याणक संबंधी माहौल की बात की इसी तरह से हमने घर पर टी.वी. चालू की और टी.वी. के चैनल पर कोई सीरियल पूरी दुनिया में लाइव टेलीकास्ट हो रहा है और अपने-अपने घर पर सब लोग वह सीरियल देख रहे हैं। हजारों-लाखों लोग देख रहे हैं तो सब लोग लगभग एक जैसा कर्म बाँध रहे हैं। उस टी.वी. पर कोई एक्सीडेंट का दृश्य चल रहा है और किसी की मृत्यु हो गई और उस दृश्य को देखकर सारे लोगों के मन में एक जैसे भाव आ रहे हैं। यदि कोई आपका मनपसंद अभिनेता उस फिल्म में या सीरियल में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो उसे देखकर लाखों लोगों को एक समान कर्म का बंधन हो रहा है; क्योंकि सबका उपयोग एक जगह लगा हुआ है। कर्म का बंधन तो लगभग सबका एक जैसा हो रहा है लेकिन उस बंधन में जो अंतर पड़ेगा वह

तीव्रमंदज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः।।6।।

इस अपेक्षा से उसमें थोड़ा-बहुत अंतर पड़ता है। इसलिए जो दुर्घटनाएँ, बडे़-बड़े एक्सीडेंट आदि होते हैं या मृत्यु की एक जैसी परिस्थितियाँ बनती हैं। वे कहीं-न-कहीं लगभग समान भावों के कारण होने वाले कर्मबंधन के कारण बनती हैं।

यदि हम जैनियों की बात करें तो सबकी परिस्थितियाँ लगभग एक जैसी हैं जैसे कि अधिकतर के यहाँ नॉनवेज नहीं आता है, शराब नहीं आती है, सब शुद्ध सात्विक भोजन करते हैं। जमींकंद नहीं खाते हैं। इस तरह सबके घर एक जैसे ही है। इस तरह स्थूल रूप से समानता दिखायी दे रही है इन स्थूल परिणामों से कर्मबंधन भी समान होता है इसलिए इनके फल में ऐसा वातावरण मिल जाता है। जैसे कहीं 15-16 डिग्री तापमान है और उस तापमान को सब एक साथ भोग रहे हैं

यह तो समानता है अर्थात् सबके एक जैसे कर्म का उदय है। इस तरह सबके समान रूप से भी कर्म का उदय होता है; लेकिन उसमें भी तारतम्य रूप से भेद तो पड़ते ही हैं। इसलिए जिसके जैसे परिणाम होंगे, जिसके जैसे भाव होंगे उसके वैसे कर्म बंधेंगे और उसको वैसा ही कर्म का फल मिलेगा।

परिस्थितियों से अप्रभावित रहना सीखें

जैसे भाव होते हैं वैसा कर्म बंधता है। जैसा कर्म बंधता है वैसा कर्म उदय में आता है। उदय में आना अर्थात् परिस्थितियों का बनना और परिस्थितियाँ जैसी बनती हैं तो उनसे प्रभावित होकर हम सुखी-दुःखी होते हैं। यदि हमें सुख-दुःख से पार पाना हो तो हमें एक कला सीखनी होगी। वह कला है परिस्थितियों से अप्रभावित रहना अर्थात् जो भी परिस्थिति बन रही है, उस परिस्थिति का कोई '**प्रभाव**' हम पर नहीं पड़े। चाहे अनुकूल बन रही हो तो उससे भी प्रभावित नहीं हों और प्रतिकूल बन रही हो तो भी हम अप्रभावित रहें। यदि ऐसी अप्रभावित होने की कला हम सीख गये तो समझ लीजिए हमारे कदम मोक्षमार्ग की दिशा में बढ़ने शुरू हो गये।

ज्ञानियों की जीवनचर्या इसीप्रकार की होती है। हम किसी भी ज्ञानी के जीवन को देखें वे पापकर्म के उदय को झेलने वाले, बर्दाश्त करने वाले, पापकर्म के उदय में अप्रभावित रहने वाले होते हैं।

पापकर्म के उदय में तकलीफ महसूस नहीं करने वाले लोग तो दुनिया में बहुत मिल जायेंगे। बड़े-बड़े संकट आए और ऐसी स्थिति में जिन्होंने धैर्य नहीं खोया, हिम्मत से काम लिया ऐसे कई व्यक्ति हैं। उनके जीवन में अनेक समस्याएँ आईं; लेकिन उन्होंने अपनी हिम्मत

नहीं खोई। समस्या बहुत आती हैं; लेकिन फिर भी वे बहुत स्ट्रोंग रहते हैं; ऐसे लोग दुनिया में हमको बहुत दिखते हैं, लेकिन पुण्य का उदय आने पर भी प्रभावित न होवें ऐसे जीव विरले ही हैं।

ज्ञानियों की परिणति

पाप के उदय में बड़े-बड़े संकटों को जीतकर उनसे अप्रभावित रहने वाले तो अनेक लोग मिल जायेंगे; लेकिन मालाओं से स्वागत हो रहा हो, लोग जय-जयकार कर रहे हों, लोग प्रशंसा कर रहे हों और फिर भी सहज रहें, ऐसे जीव विरले ही मिलते हैं। यदि आप ध्यान से देखेंगे तो ज्ञानियों का जीवन ऐसा ही दिखायी देता है। पाप के उदय में खींझते नहीं हैं, मतलब उबलते नहीं हैं। पुण्य के उदय में रीझते नहीं है, आकर्षित नहीं होते हैं। ज्ञानी तो सदा ज्ञान में भींगते हैं। ज्ञान स्वभाव का वेदन करते हैं।

सामान्यत: प्रतिकूलता होती है तो क्रोध उत्पन्न हो जाता है। अनुकूलता ज्यादा होती है तो मान हो जाता है। विकार तो दोनों ही है। अनुकूलताएँ अभिमान करा देती हैं, प्रतिकूलताएँ क्रोध दिला देती हैं पर क्रोध-मान दोनों ही विकृतियाँ हैं। इन दोनों में जिनका समभाव होता हैं। वे ज्ञानी होते हैं। मेरी भावना में पंक्ति आती है-

'होकर सुख में मग्न न फूले, दु:ख में कभी न घबरावे'

अर्थात् सुख में मग्न होकर फूलें नहीं और दु:ख में कभी भी घबराये नहीं, इसी का नाम सहजता है। यही निरास्रव होने की कला है। हमारे परमात्मा क्या करते हैं? हम उनका अनुसरण करते हैं, जो हमसे बड़े होते हैं, जो हमारे लिए सम्माननीय होते हैं, जो आदर्श व्यक्ति होते हैं वे हमारे मार्गदर्शक होते हैं, हम उनका अनुसरण करते हैं। यदि हमें

अपने तीर्थंकरों, भगवंतो के जैसा बनना है; तो हमें उनका अनुसरण करना होगा। वे क्या-क्या करते हैं उनके अनुसार चलना होगा।

सहज रहने की अद्भुत कला

वे सर्वज्ञ हैं, सब कुछ जानते हैं। वीतरागी हैं अर्थात् कुछ नहीं करते हैं। उनमें दो बातें है पहले सर्वज्ञ हैं अर्थात् सब कुछ जानते हैं और दूसरी विशेषता- वीतरागी हैं अर्थात् कुछ नहीं करते हैं। सब कुछ जानते हुए भी कुछ नहीं करते हैं। सबको जानें और जानकर भी कुछ न करें इसी का नाम भगवान है। हमें भी यही काम करना है अर्थात् जानना तो सबको है पर करना कुछ भी नहीं है और सबको जानते हुए भी सहज ही रहना है। यदि जीवन में पापकर्म का उदय आ गया तो भी ठीक है। यदि जीवन में पुण्यकर्म का उदय आ गया तो भी ठीक है। लोग हमें काले झण्डे दिखा रहे हैं तब भी हमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। लोग जय-जयकार कर रहे हैं तब भी कोई फर्क नहीं पड़ता है। लोग बुराइयाँ कर रहे हैं तब भी कोई फर्क नहीं पड़ता है। लोग प्रशंसा कर रहे हैं तब भी कोई फर्क नहीं पड़ रहा है; क्योंकि जिसकी प्रशंसा और आलोचना की जा रही है; वह तो मैं हूँ ही नहीं।

एक व्यक्ति किसी की बहुत बुराई कर रहा था और हमें ऐसा लग रहा था कि यह व्यक्ति हमारी बुराई कर रहा है और हम दु:खी हो रहे थे हमारे बगल में बैठा कोई दूसरा व्यक्ति बोला कि यह आपकी बुराई नहीं कर रहा है यह तो किसी अन्य की बुराई कर रहा है तो आप सहज हो गये। कितना सरल कार्य है कि जैसे ही हमें पता लगा कि ये मेरे लिए निंदापरक शब्दों का इस्तेमाल नहीं कर रहा है तो हम तुरंत सहज हो जाते हैं। ऐसे ही किसी व्यक्ति ने हमारी निंदा की, आलोचना की,

बुराई की लेकिन वास्तव में तो उसने हमारी बुराई नहीं की क्योंकि हम शरीर नहीं हैं। हम शरीर के अंदर बैठै हुए एक जीव तत्त्व हैं। कोई मेरी बुराई नहीं कर सकता है तो कोई मेरी प्रशंसा भी नहीं कर सकता है यदि वह मेरी निंदा-प्रशंसा नहीं कर सकता है तो मैं प्रभावित होकर राग-द्वेष रूपी विकारी भाव क्यों कर रहा हूँ। हम सहज क्यों नहीं रह पाते हैं। यह सहज रहने की कला ज्ञानियों के पास पाई जाती है।

जिनका शारीरिक स्वास्थ्य कमजोर होता है उनको ठण्डी और गर्म दोनों ही हवाएँ परेशान करती हैं। उनको थोड़ी-सी गर्म हवा लगी तो 'लू' लग जायेगी और थोड़ी-सी ठण्डी हवा लगेगी तो जुकाम हो जायेगा, छींके आना चालू हो जायेंगी। इसीतरह जिनका अंतरंग, आत्मिक स्वास्थ्य कमजोर होता है उनको निंदा और प्रशंसा की दोनों ही हवाएँ परेशान करती हैं। निंदा की गर्म हवा लगने पर उन्हें क्रोध की 'लू' लग जाती है और प्रशंसा की ठण्डी हवा लगने पर उन्हें मान का जुकाम हो जाता है, इसलिए दोनों ही परिस्थितियों में हमें सहज रहना है। यही अभ्यास करना है।

बंध-अबंध : अभिप्राय से, क्रिया से नहीं

हम कितनी पूजा-अर्चना करते हैं इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। हम कितना व्यापार धंधा करते हैं इससे भी कोई फ़र्क नहीं पड़ता है। हमारा उस काम के प्रति उद्देश्य/भाव क्या है उससे फर्क पड़ता है। हमारे हाथ से किसी व्यक्ति की हत्या हो गई हमें बाइज्जत बरी कर दिया जाता है, क्योंकि हमारा भाव/उद्देश्य उसको मारने का नहीं था। अदालतों में ऐसा भी होता है यदि हम इस बात को सिद्ध कर दें कि आत्मरक्षा में उसकी मृत्यु हो गई, मैं तो अपने बचाव में था तो आप

सजा से मुक्त हो जायेंगे। इसका अर्थ है कि अदालत का कानून भी फैसला सुनाने के पहले हमारे भाव/उद्देश्य पर ध्यान देता है। तब जैनधर्म तो अभिप्राय को ही पकड़ता है। हमारी क्रिया को नहीं; अपितु हमारे भावों को देखता है।

दो व्यक्तियों की एक जैसी क्रियाएँ दिखायी दे रही हैं। दो व्यक्ति एक जैसा काम करते दिखाई दे रहे हैं। समान कार्य कर रहे हैं और उन दोनों व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। एक मरकर स्वर्ग में चला जाता है और एक मरकर नरक में चला जाता है। पुराणों में एक घटना आती है कि एक मुनिराज गुफा में बैठे हुए थे और एक बाघ मुनिराज को खाने के लिये दौड़ता हुआ आया और दूसरी तरफ से एक जंगली सुअर/शूकर बचाने के लिये दौड़ता हुआ आया और दोनों की आपस में लड़ाई हो गई। लड़ाई इतनी बढ़ गई कि एक-दूसरे को जान से मार रहे हैं। बाघ सुअर को मार रहा है और सुअर बाघ को मार रहा हैं। 2-4 घंटे तक लड़ाई चलती रही आपस में दोनों लहूलुहान हो गये और दोनों ही अंत में मर गये। दोनों की मृत्यु एकसाथ हो गई।

दोनों को क्रोध का परिणाम था; लेकिन एक मरकर स्वर्ग में चला गया और एक मरकर नरक में चला गया। बाघ मरकर नरक में चला गया और सुअर मरकर स्वर्ग में चला गया। हम वीडियो रिकॉर्डिंग करें और फिर फैसला करें कि किसको कहाँ जाना चाहिए? पर रिकॉर्डिंग में तो यही पता चल रहा है कि दोनों एक जैसा काम कर रहे हैं अतएव रिकॉर्डिंग से पता नहीं चलेगा। हमें तो अंतरंग परिणामों के एक्स-रे से पता चलेगा कि अंदर क्या चल रहा है। एक के हृदय में मुनिराज को बचाने का भाव है और दूसरे के हृदय में मुनिराज को खाने (मारने) का भाव है। जिसके हृदय में

खाने का भाव है वह उन भावों से मरकर नरक में चला गया और जिसके हृदय में बचाने का भाव है वह भावों की शुद्धता के कारण स्वर्ग में चला गया। फल तो भावों का लगता है। हम क्रिया को देखते हैं लेकिन जैन दर्शन तो अभिप्राय और परिणामों को देखता है।

हमें तो परिणाम भी पकड़ में नहीं आ रहे हैं। जिनागम बहुत सूक्ष्मता की बात करता है। हमारा अभिप्राय कैसा है? परिणाम कैसा है? उसका फल लगेगा। हमें पता ही नहीं है और क्रियाएँ किये जा रहे हैं। पूजन करने के लिये बैठे हैं और दिमाग यहाँ-वहाँ दौड़ रहा है। कौन आ रहा है कौन जा रहा है, इधर-उधर दिमाग लगा हुआ है और सोचते हैं कि मैं बहुत अच्छे कार्य में लगा हुआ हूँ। यह अच्छा काम नहीं है। हम जिस कार्य को कर रहे हैं उसमें ही हमारा उपयोग लगा होना चाहिए; क्योंकि जहाँ हमारा उपयोग है, वहीं हम हैं। हम वैसे ही हैं, जैसा हमारा उपयोग है। सब भावों का खेल है। अत: भावों को बदलना है।

भाव सुधरेंगे तो कर्म सुधरेंगे। भाव अर्थात् परिणाम। परिणाम सुधरेंगे तो द्रव्य कर्म हमारे नियंत्रण (कंट्रोल) में आ जायेगा। पर द्रव्यकर्म पर हमारी चलती नहीं है जिन भावों पर हमारी चलती है उन भावों पर हम चलाते नहीं हैं। जहाँ नहीं चलती है वहाँ चलाने का प्रयास करते हैं। हम चलाने का प्रयास तो करते हैं परन्तु वहाँ चलती नहीं है और फिर हम सिर फोड़ते हैं, दिमाग लगाते हैं और दु:खी होते हैं। हमारी चलती नहीं है और जब चलेगी नहीं तो दु:ख होगा। कितनी मेहनत करें, कितना पुरूषार्थ करें कि काम हो जाये? लेकिन होता ही नहीं है। एड़ी से चोटी तक का जोर लगा लें लेकिन जहाँ सुख है नहीं, वहाँ सुख मिलेगा भी नहीं। विषयों में सुख नहीं है तो मिलेगा भी नहीं। जबरदस्ती दिमाग लगा रहे हैं, जबरदस्ती कर्ता बन रहे हैं।

यहाँ हम भावों की तीव्रता और मंदता समझ रहे हैं। हमारे भाव जानबूझकर किसी कार्य को कर रहे हैं या अनजाने में वह कार्य किया गया है अथवा उस कार्य का आधार क्या था। हमारी उस काम को करने के पीछे शक्ति किस प्रकार की थी इन सब कारणों से जो कर्म बंध रहे हैं उनमें फर्क पड़ता है।

कर्म बंधन एक स्वचालित प्रक्रिया है

कर्म कैसे बंध रहे हैं? हमें यह पता ही नहीं चल पा रहा है कि वे अपने आप बंध रहे हैं। यह एक स्वचालित प्रक्रिया है। कर्म आ रहे है और बंध रहे हैं। आत्मा के साथ चिपक रहे हैं। वे स्वयं से बदल रहे हैं। अपकर्षण–उत्कर्षण–उदीरणा यह सारी प्रक्रिया चल रही है। जब प्रक्रिया पूरी हो जायेगी तब वे फल देंगे और इन कर्मों के फल को हमें भोगना पड़ेगा। यह सब कौन कर रहा है?

टोडरमल जी ने मोक्षमार्ग प्रकाशक के दूसरे अध्याय में उदाहरण दिया, मुँह में भोजन का एक ग्रास बुद्धिपूर्वक खाता है। मुँह में रखने तक तो कहता है मैंने किया और जब गले से नीचे उतर गया उसके बाद उस ग्रास का क्या होगा? उसका संचालन कौन कर रहा है? गले से नीचे उतर जाने के बाद उस एक ग्रास का हड्डी, खून, मांस, मज्जा, मल–मूत्र आदि सप्त धातु रूप से परिणमन होना, यह सब कौन कर रहा है? क्या यह सब आपसे पूछ कर होता है। हमने जो भोजन गले से नीचे उतारा उसके बाद उसका क्या होगा इस पर हमारा नियंत्रण नहीं चलता है। तो कौन बदलता है? वे सब अपने आप बदलते हैं। सारे परमाणु अपने आप सप्त धातु रूप में परिवर्तित होते हैं।

इसीप्रकार हमारे भावों का निमित्त पाकर आने वाली कार्मण

वर्गणाएँ स्वत: ही अलग-अलग कर्म प्रकृतियों में बँट जाती हैं। आठ कर्मों में बँट जाती हैं। आयु कर्म को छोड़कर सात कर्म प्रत्येक समय बंध रहे हैं। आयु कर्म जीवन में एक बार बंधता है। मरकर कहाँ पर जाना है वह आयुकर्म पर निर्भर करता है।

जीव के भावों के अधिकरण की चर्चा

भाव कैसे-कैसे और कब बदल जाते हैं। इन भावों के बदलने के मुख्य रूप से दो आधार अगले सूत्र में बताते हैं।

अधिकरणं जीवाजीवा:।।7।।

अधिकरण अर्थात् आधार। यहाँ जीव और अजीव ये दो तरह के आधार बनते हैं जिनकी वज़ह से कर्मों का आस्रव होता है। जीवतत्त्व आधार बनता है उसे जीवाधिकरण कहा जाता है उसके 108 प्रकार बनते हैं। माला में 108 मणिया (मनके) होते हैं। 108 प्रकार से कर्म का आस्रव होता है। तत्वार्थसूत्र के सूत्र क्रमांक आठ में 108 प्रकार के आस्रव बतलाये हैं। उन कर्मों की निवृत्ति के लिये अरिहंत, सिद्ध, णमोकार मंत्र, पंच परमेष्ठी आदि का जाप करते हैं। और हम यह भावना भाते हैं कि इन 108 मणियों के माध्यम से 108 कर्मों से हमें अवकाश मिल जाये।

108 प्रकार से कर्मों का आस्रव किस प्रकार से होता है?

आद्यं संरम्भ-समारम्भारम्भ-योग-कृत-कारितानुमत-कषाय-विशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकश:।।8।।

कृत-कारित-अनुमोदना की चर्चा

आद्यं अर्थात् पहले वाले, जीव अधिकरण की बात कह रहे हैं।

समरम्भ, समारम्भ और फिर आरम्भ। समरम्भ अर्थात् कार्य को करने का विचार करना। हमने विचार किया कि हमें क्या करना है। दिमाग में कुछ योजना बनायी, वह सब समरम्भ हैं। जैसी योजना बनाई थी, उसके अनुसार हमने सामान जुटाया, वह समारम्भ है और उस कार्य को करना प्रारम्भ कर देना आरम्भ है।

हमने योजना बनाई कि आज भोजन में खीर बनानी है। यह समरम्भ हुआ, दिमाग में निश्चित किया कि आज क्या बनाना है यह पहला काम है; जब निश्चित हो गया फिर उसके लिये क्या-क्या चीज चाहिए उसके लिये सारे सामान इकट्ठा करना वह समारम्भ है और उस कार्य को शुरू कर देना वह आरम्भ है। समरम्भ-समारम्भ और आरम्भ इन तीनों से आस्रव होता है। हम मन में क्या सोच रहे हैं, क्या करने वाले हैं और क्या करेंगे इन तीनों से आस्रव में फर्क पड़ता है। आस्रव किस तरह का होने वाला है यह समरम्भ-समारम्भ और आरम्भ पर निर्भर करता है।

उसके बाद योग का क्रम आता है। योग अर्थात् मन-वचन और काय। समरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में तीन मन, वचन, काय और जुड़ गए।

कृतकारितानुमत - कृत, कारित और अनुमत (अनुमोदना) इन शब्दों के पीछे बहुत गूढ़ रहस्य छिपे हैं। कृत अर्थात् करना। कारित अर्थात् करवाना। मैंने किया और मैंने करवाया ये दोनों बातें अलग-अलग हैं। एक है स्वयं करना और दूसरा है किसी अन्य से करवाना। हमने किया भी नहीं और हमने करवाया भी नहीं लेकिन अनुमोदना/प्रशंसा करना। हमारे मन से निकला कि अच्छा हुआ, बहुत अच्छा काम हुआ, ये तो होना ही चाहिए था, यह जो अनुमोदना का भाव है, इसका फल भी कृत के समान ही कहा है। हम किसी जीव को मारें या

किसी को मरवाएँ या किसी के द्वारा मारने पर उसकी प्रशंसा करें, तीनों एक ही बात है। जरा सोचें कि हम बैठे-बैठे कितने पाप कर लेते हैं। कितने कर्म बांध लेते हैं।

108 भेद कैसे होते हैं?

हम अच्छा सोचेंगे, अच्छे-अच्छे कार्यों की अनुमोदना करेंगे तो पुण्य कर्म का संचय होगा और यदि खोटे कार्य की अनुमोदना करेंगे तो पाप कर्म का संचय होगा। 108 प्रकार यहाँ बतला दिये। सर्वप्रथम कहा समरम्भ, समारम्भ और आरम्भ। फिर कहा मन, वचन और काय। फिर तीन और कहे कृत, कारित और अनुमोदना। फिर इनके साथ में कह दिया क्रोध, मान, माया और लोभ। इन सबको गुणा करेंगे तो 108 हो जायेंगे। 3x3x3x4=108

जैसे मन, वचन, काय का कृत-कारित-अनुमोदना से गुणा करना है तो कैसे करेंगे, मनकृत, मनकारित, मन अनुमोदना। मन से किया, कराया और अनुमोदना की। अब वचन में भी ऐसे ही लागू होगा। वचन कृत, वचनकारित और वचनानुमोदना। अब समरंभ, समारंभ और आरंभ जोड़ दो। मनकृत समरम्भ, वचनकृत समरम्भ और कायकृत समरम्भ इत्यादि।

पाप में कृत-कारित-अनुमोदना

विशेषकर जब टी.वी. के सामने बैठकर चैनल घुमाते हैं तो कैसे-कैसे कर्म बंधते हैं। जिसे हम हीरो कहते हैं वह व्यक्ति टी.वी. की स्क्रीन पर दस लोगों को मार रहा है, पीट रहा है, धमाधम चल रही है और हमें उसमें मज़ा आ रहा है और साथ में हम कहते भी जाते हैं कि और पीट, और पीट हमें किसी अन्य को पिटते हुए देखने में मजा आ

रहा है। जरा सोचो! कि इससे हमें क्या मिल रहा है? कुछ भी तो नहीं मिल रहा है? शास्त्रों में कह रहे हैं कि इससे हमें कर्मों का आस्रव हो रहा है। हम बैठे-बैठे जबरदस्ती कर्म बाँध रहे हैं। वह जो हीरो पीट रहा है उसको पीटने के पैसे मिल रहे है, और जो मार खा रहा है उसको मार खाने के पैसे मिल रहे हैं और जो जिसको पीट रहा है उसको पीटने का दु:ख नहीं हो रहा है वे दोनों तो यह सीन रिकार्ड होने के बाद साथ में बैठकर चाय-कॉफी पीने वाले हैं।

यह तो सब नाटक है। नाटक अर्थात् न अटक। नाटक कहता है कि इसमें अटकना नहीं और हमारा चित्त उसी में अटका रहता है। वे सीरियल वाले ऐसे मोड़ पर ले जाकर छोड़ते हैं कि हम सोचते रहते हैं कि यह सीरियल कल कितने बजे आएगा? अब आगे क्या होगा? और यदि आज शुक्रवार हो तो अब आगे का सोमवार को आएगा तब तक हमारे दिमाग में वो ही वो चलता रहता है। दो-तीन दिन तक यह लगता है कि अब आगे क्या होगा? आजकल तो सब समझने लग गए हैं कि यह जो दिखाते हैं हकीकत में ऐसा होता नहीं है; लेकिन 10-12 साल पहले ऐसे अंतिम सीन पर छोड़ते थे तब लगता था कि पता नहीं क्या होगा? लेकिन अब तो सब समझने लग गये हैं कि ये केवल दिखा रहे हैं ये हकीकत में मरता नहीं है। कहने का आशय यह है कि हम उसको देख-देखकर भावों से इसको मारना चाहिए आदि सोचते रहते हैं। अरे! हमसे राय लेकर निर्देशक ने संवाद नहीं लिखे हैं।

यह जो पिक्चर चल रही है वह अपने हिसाब से चलेगी या निर्देशक के हिसाब से चलेगी और तो और वह पिक्चर तो कई महीनों पहले तैयार हो चुकी है। हमारे सामने अभी आ रही है इसलिए हमें ऐसा लगता है कि ऐसा हो जाये तो अच्छा। लेकिन यह सब अभी नहीं हो रहा है।

वह सीन तो बहुत पहले ही तैयार हो चुका था, अब यदि हम आज देख रहे हैं तो हमें ऐसा लगता है कि ऐसा नहीं, ऐसा होना चाहिए, पर सारी की सारी फिल्म पहले से ही तैयार है। हम जो देख रहे हैं, वह तो केवल एक रिकॉर्डिंग है। ये शॉट तो पहले ही तैयार हो चुके हैं।

आचार्य कह रहे हैं कि हम अनुमोदना करके पाप बांध रहे हैं। घर बैठे-बैठे, प्रवचन सुनते-सुनते, मंदिर में बैठे-बैठे, टी.वी. की स्क्रीन के सामने बैठे-बैठे कृत-कारित-अनुमोदन, मन-वचन-काय, समरम्भ-समारम्भ-आरम्भ इनसे यह जीव निरन्तर कर्म बांधता रहता है और इतना ही नहीं आगे फिर कह दिया कि क्रोध-मान-माया-लोभ रूप कषायों के परिणाम भी साथ में चलते रहते हैं। वे सब अधिकरण हैं, आधार हैं। हमें जो भी कर्म के आस्रव हो रहे हैं, वे सब इनके ही आधार से हो रहे हैं।

जब बड़े-बड़े संकट आते हैं, तब बहुत लोग ऐसा कहते हुए मिल जायेंगे कि हमने जीवन में किसी कभी का बुरा नहीं किया। फिर मेरे साथ ही बुरा क्यों हो रहा है? मैंने किसी का बुरा किया ही नहीं फिर मुझे हार्ट की समस्या क्यों आ गयी, मेरी किडनी खराब क्यों हो गयी। मैं तो शुद्ध सात्विक भोजन करता हूँ। घर का बना भोजन करता हूँ। बाजार का, होटल का खाना कभी भी नहीं खाता हूँ, फिर मेरे साथ ऐसी परेशानियाँ क्यों हो रही हैं? फिर हम आपसे पूछते हैं कि क्या आप सच कह रहे हो कि आपने कभी किसी का बुरा नहीं किया? तो फिर फिल्म देखते समय अमिताभ बच्चन को कौन कह रहा था कि - और पीट और मार। अब कह रहे हो कि हमने कभी किसी का बुरा नहीं सोचा।

मन-वचन-काय पर नियंत्रण क्यों जरूरी है?

आखिर बुरा करना क्या होता है? फल तो भावों का ही मिलता

है। आज से 10 साल पहले जब सद्दाम हुसैन को फांसी दी गई थी, तो उसे टी.वी. पर लाइव दिखाया गया था। आज जब हम टी.वी. पर कितने ही आतंकियों को देखते हैं, कितनी ही घटनाएँ देखते हैं। न्यूज पेपर देखते हैं तब हमारे भाव किस तरह से बदल जाते हैं। हमें इस तरह से भाव आते हैं कि इन आतंकियों को मार देना चाहिए, फाँसी पर लटका देना चाहिए। फल तो हमारे भावों के आधार पर मिलता है। जैसा हमारे मन में चल रहा है उसका फल हमको मिलकर ही रहता है।

हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं, करेंगे तो क्या, करना हमारे हाथ में भी तो नहीं है और हम करना भी बहुत चाहते हैं, मन में बहुत सोचते हैं; लेकिन जितना मन में होता है। उसका 1-2 प्रतिशत ही वाणी में निकलता है और जितना वाणी से निकलता है उसका भी बहुत कम प्रतिशत एकाध प्रतिशत ही काय के द्वारा प्रगट होता है। मन-वचन-काय की ऐसी ही दशा है। बहुत सारे पाप तो इसलिए नहीं होते; क्योंकि कानून सज़ा दे देता है। सरकार सज़ा देती है। हम किसी की हत्या, मारपीट इसलिए भी नहीं करते, किसी के साथ में लड़ाई-झगड़ा इसलिए भी नहीं करते; क्योंकि हमें पुलिस का भय है।

जबरदस्ती सज़ा मिलेगी इसलिए पंगा क्यों लें। हम काय से तो नहीं करते; लेकिन वचनों से- 'देख लूँगा तुझे, तू समझता क्या है।' वचन कहने से हमें कौन रोकता है? मुँह से बोलने पर कोई सज़ा नहीं मिलती है। एक व्यक्ति रोजाना धमकी देता था तो दूसरा व्यक्ति पुलिस थाने पहुंच गया और केस हुआ तब जज ने पूछा क्या हुआ? तो वह दूसरा व्यक्ति बोला-यह मुझे कहता है कि तुमको मार दूँगा। जज बोला-अभी तक मारा है क्या? वह बोला मारा तो नहीं है। तब

जज बोला–मारा नहीं तो यहाँ पर क्यों आए हो? इसका अर्थ यह है कि बोलने की सज़ा नहीं है; लेकिन फिर भी हमारी भाषा अनुचित होने पर आस-पड़ौस वाले कहते हैं, परिवार वाले कहते हैं कि – अपने वचनों को सम्भालिए। तुम अच्छा बोला करो, गंदी भाषा, निकृष्ट भाषा का प्रयोग करना ठीक नहीं है। इसका अर्थ हम क्या बोल रहे हैं इस बोलने पर हमारे आस-पास वाले लोगों का नियंत्रण होता है। हमारे ऊपर मानसिक दबाव पड़ता है। हम गलत शब्दों का प्रयोग नहीं करेंगे क्यों? क्योंकि आस-पास वाले सोचेंगे कि ये पण्डितजी कैसे बोलते हैं। हम तो इनको अच्छा समझते थे; लेकिन इनकी भाषा कितनी खराब है इसलिए सम्भल कर बोलना पड़ता है।

इस तरह वचनों पर नियंत्रण हो गया, काय पर नियंत्रण करने के लिये सरकार है। शरीर से पाप हो रहे हैं तो उन पर नियंत्रण करने के लिए सरकार कानून बनाती है। वचन से जो पाप हो रहे हैं उन पर नियंत्रण करने के लिए समाज है, परिवार है; लेकिन हमारे मन पर नियंत्रण करने वाला कौन है? मन से जो पाप होंगे उसकी सजा कौन देगा? उसको कौन रोकेगा, उसके लिए तो हम स्वतंत्र हैं। कुछ भी सोचें, कुछ भी हमारे मन में आवे तो सोचने से कौन रोकता है? किसी का मोबाइल देखकर मन में तो आ रहा है कि यह मोबाइल कितना अच्छा है मुझे भी ऐसा ही मोबाइल चाहिए, पर चोरी नहीं कर सकता है।

चोरी करना अच्छी बात नहीं, लेकिन मन में तो मोबाइल की चोरी भाव आ रहा है, इसका फल कौन भोगेगा? इस भाव की सज़ा मिलनी चाहिए या नहीं। इसलिए यहाँ मन को पकड़ने की बात कर रहे हैं। जैन धर्म क्रिया को, वाणी को इतना महत्त्व नहीं देता जितना कि अभिप्राय को देता है; इसलिए कह रहे है कि नियंत्रण करना है तो मन

पर करो; क्योंकि मन पर नियंत्रण हो गया तो वाणी पर नियंत्रण हो ही जायेगा और मन और वाणी पर नियंत्रण हो गया तो काय पर नियंत्रण अपने आप हो जायेगा। काय पर नियंत्रण करने के लिए वाणी और वाणी पर नियंत्रण करने के लिए मन को नियंत्रित करना होगा।

पाप की शुरूआत मन से होती है। मन में ही पाप उत्पन्न होता है और मन से जब पाप फूटता है, तो वाणी से निकल जाता है और वाणी से जब फूटता है तो काय के माध्यम से क्रिया होती है। कृत का अर्थ है खुद ने कोई कार्य किया, कारित अर्थात् किसी से करवाया और अनुमोदन अर्थात् अनुमोदना/प्रशंसा करना। हम यदि जमींकंद आलू, प्याज आदि नहीं खाते हैं; लेकिन हमने कहा कि वे मेहमान आये हैं तो उनके लिए बना लो। मैं तो खाता नहीं हूँ परन्तु मेहमान के लिए बना लो, यह हमने कारित का कार्य किया। मैं स्वयं जमींकंद नहीं खाता। मेरा तो त्याग है; लेकिन मैंने अन्य के लिए बनवा दिए तो यह कारित हो गया। करो या करवाओ एक ही बात है। करता भी नहीं हूँ और करवाता भी नहीं हूँ अब कोई व्यक्ति आलू खा रहा था और हमने कहा, हाँ-हाँ खाओ तो हमने उसकी अनुमोदना कर दी। हमें उसकी अनुमोदना का फल अवश्य मिलेगा।

पुण्य में कृत-कारित-अनुमोदना

जैसे पापकर्म में कृत-कारित-अनुमोदना का फल लगता है वैसे ही पुण्य बंधन में भी कृत-कारित-अनुमोदना का फल लगता है। अब हम पुण्य की चर्चा करते हैं। इसमें हमें बड़ा आनंद आयेगा। पापकार्य में हम पटाखे नहीं जलाते क्योंकि हिंसा होती है; लेकिन किसी बच्चे को समझाते हैं कि ऐसे-ऐसे पटाखे जलाना। हमने किया तो नहीं लेकिन

करवा दिया। कागज लेना और आग से कागज जला देना और फिर दूर भाग जाना यह आप कर तो नहीं रहे हो लेकिन करवा रहे हो और जो आतिशबाजी हो रही है उसे देखकर यह कितना सुंदर है यह कितना अच्छा लग रहा है हम उसकी अनुमोदना कर रहे हैं।

करने-कराने और अनुमोदना करने; तीनों में एक जैसा पाप लग रहा है। पुण्य का भी ऐसा ही सूत्र है। पुण्य की पूँजी कैसे बढ़ा सकते हैं? कोई व्यक्ति प्रवचन सुनने नहीं आ सकता; क्योंकि उसके ऑफिस का समय है; लेकिन वह अन्य व्यक्तियों को प्रेरित कर यहाँ प्रवचन सुनने के लिए भेज सकता है। हम सुन तो नहीं पा रहे लेकिन और लोगों को सुनवा तो सकते हैं; यह कारित हुआ। जो सुनने का काम कर रहे हैं, प्रवचन सुनने जो लोग आए हैं उनकी अनुमोदना करके भी वैसा ही पुण्य बाँध सकते हैं। जो प्रवचन में बैठ रहे हैं, पूजन कर रहे हैं, मंदिर आ रहे हैं, हम यदि खुले दिल से उनकी प्रशंसा कर रहे हैं तो हम उन जैसा पुण्य बांध सकते हैं।

धर्म में स्थित करना पुण्य का कार्य कैसे?

यह सब कर्मों का खेल है कि कैसे भावों के साथ हमने काम किया है। जैसे भाव वैसा कर्म बंधन। हमने जैसे भाव किये उनका वैसा फल मिलेगा। इस अनुमोदना करने के भाव का फल भी बहुत मिलता है। हमारे द्वारा मुक्त कंठ से की गई प्रशंसा बहुत बड़ा काम करती है। हम बच्चों की प्रशंसा करते हैं। पाठशाला में आने वालों की प्रशंसा करें। छोटे-छोटे बच्चों की प्रशंसा करें। यदि हमें नहीं आता है तो उनको देख-देखकर प्रशंसा करें। सबको प्रेरित करते रहना चाहिए। शास्त्र में ऐसी बातें लिखी गयीं हैं, यह भी चरणानुयोग है। प्रथमानुयोग में ऐसी

ही तो बातें होती हैं। करणानुयोग में इसी तरह की बातें होती हैं।

एक द्रव्यानुयोग को छोड़ दें तो बाकी तीनों अनुयोग इसी तरह की बातें करते हैं। मान लीजिए कोई बालक मन्दिर/पाठशाला आया और उसने जमींकन्द, रात्रि भोजन आदि का त्याग कर दिया; परन्तु जब वह यहाँ से बाहर निकलता है, स्कूल जाता है। थोड़ा बड़ा होकर अपने दोस्तों तथा अन्य लोगों के बीच में उठता-बैठता है, तो लोग कहते हैं- अभी से छोड़ दिया यह कोई छोड़ने की उम्र है। पूरी दुनिया में इसी तरह का माहौल है। आस-पड़ौस वाले परिवार वाले, उसके रिश्तेदार सब यही कहेंगे कि क्या अभी से बच्चों को इन कार्यों में लगा दिया अभी तो इसकी खाने-पीने की उम्र है, अभी से क्यों छुड़वा दिया। ऐसा कहने वाले बहुत लोग मिलेंगे वे ऐसा कहकर पाप बांध रहे हैं।

जब बच्चा यह बात सुनता है या कोई भी व्यक्ति जिसने आलू आदि छोड़ा है जब वह ऐसी बाते सुनता है तब कुछ समय बाद उसकी इच्छाशक्ति कमजोर होने लगती है।

उसने छोड़ तो दिया था, त्याग तो कर दिया था पर अंदर से ऐसी आवाज आने लगती है कि वास्तव में मैं कहीं फंस तो नहीं गया? गलत तो नहीं कर दिया? क्या करूँ खा ही लूँ क्या? मन में बार-बार ऐसा आने लगता है। क्योंकि चारों ओर माहौल ऐसा ही है, ऐसी दशा में हमने उस व्यक्ति को या बच्चे को कंधे पर हाथ रखकर एक वाक्य कह दिया कि बहुत अच्छा, तुमने जो काम किया वह काबिल-ए-तारीफ है। इससे उस विचलित व्यक्ति को कितना बल मिलता है हम उसकी कल्पना नहीं कर सकते। जहाँ चारों ओर माहौल में उसका निषेध करने वाले लोग हैं वहाँ हमारे द्वारा कहा गया एक छोटा-सा

वाक्य उस व्यक्ति को स्थितिकरण प्रदान करता है। उस व्यक्ति को मजबूती प्रदान करता है, उसे हिम्मत दिलाता है, उसे जोश दिलाता है। उसे हमारी सांत्वना की जरूरत है, उसे हमारी प्रशंसा की जरूरत है, उसे जरूरत है हमारे द्वारा कहे गये दो अच्छे शब्दों की।

जब कभी हम शास्त्र सभा में किसी बच्चे को आता हुआ देखें और भले ही 10-20 मिनिट भी उसने बैठकर सुना हो तो सुनने के बाद उसके कंधे पर हाथ रखकर अवश्य कहें कि शाबाश बेटा! आपने आज बहुत अच्छा काम किया जो 10 मिनिट सुना। उस बच्चे को अच्छा लगेगा, उसे खुशी होगी। यह इसलिए जरूरी है; क्योंकि हम तो साधारण मनुष्य हैं, हीन पुण्य वाले हैं, इस दुषम पंचमकाल में हम लोगों ने जन्म लिया है। हम लोगों के परिणाम तो वैसे ही विकृत रहने वाले हैं।

पंचम काल की हीनता का आगमोक्त उदाहरण – पद्म पुराण का वह प्रसंग जिसमें रामचन्द्रजी ने विभीषण पर शक किया था क्योंकि वह रावण का भाई था और वह रावण का साथ छोड़कर रामचन्द्रजी के पास आ गया था। तब रामचन्द्रजी को लगा था कहीं ऐसा नहीं हो कि यहाँ की सब गुप्त बातें रावण को बता दे। ऐसी शंका होने पर उन्हें विश्वास दिलाते हुए विभीषण ने कहा कि यदि मेरे मन में खोट हो, यदि मेरे मन में मायाचारी का भाव हो तो मैं मरकर पंचमकाल का मनुष्य बनूँ इसका अर्थ यह है कि उनकी दृष्टि में पंचम काल का मनुष्य बनना यह सज़ा है। आप विश्वास करें कि मैं गलत व्यक्ति नहीं हूँ। मैं हृदय से आपका साथ देना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरा भाई रावण गलत कर रहा है। वे मेरे बड़े भाई हैं; लेकिन वे गलत काम कर रहे हैं। इसका अर्थ है कि पंचमकाल में जन्म लेना कोई अच्छा कार्य नहीं है। हम लोगों को तो

सद्भाग्य से जिनवाणी के समागम के सुयोग्य अवसर प्राप्त हो गये हैं।

अब हम थोड़ा पीछे तीर्थंकर के जीवन में चलते हैं। तीर्थंकर परमात्मा के जीवन में देखें। जब तीर्थंकर परमात्मा को दीक्षा लेने का भाव आता है, तब लौकांतिक देव स्वर्ग से आते हैं। दीक्षा कल्याणक का प्रसंग है, इस भव में तीर्थंकर बनने वाले हैं और उनके मन में आया कि मुझे दीक्षा लेनी चाहिए। इतना-सा भाव आते ही स्वर्ग से देव आ जाते हैं। वे कहते है कि हे प्रभो! हम आपके वैराग्य की अनुमोदना करते है। धन्य हैं आप, आपके वैराग्य भावों की जय हो, आपके परिणामों की जय हो। जब मन में अच्छा भाव आ जाता है तो उसे अनुमोदना की जरूरत होती है। मन में यदि अच्छा भाव आ जाता है और उसे प्रशंसा मिलती है फिर वह भाव चलायमान नहीं हो सकता।

एक व्यक्ति जो यहाँ पहली बार जिनधर्म का श्रवण कर रहा है। उसने सोचा कि ठीक है पहली बार आया हूँ कुछ ज्यादा तो समझ में नहीं आया; लेकिन किसी और ने कहा था तो हम आ गये। उसने सोचा कोई बात नहीं कल तो हम अपना काम ही करेंगे, इतना वह सोच ही रहा था और उसी समय दूसरा व्यक्ति बोला अरे! आप आज आ गये तो मज़ा आ गया। आपको देखकर दिल खुश हो गया। आप रोजाना आओगे तो और मज़ा आयेगा। अब वो जो सोच रहा था कि कल से नहीं आऊंगा, आपके इतना-सा कहने से उसका मन बदलने लगा। इसका मतलब हमारे द्वारा कहे गये ये वाक्य बल देने का काम करते हैं। इन शब्दों की बहुत कीमत है। अत: सदैव हमारे हृदय में साधर्मियों, धर्मात्माओं के प्रति वात्सल्य का भाव होना चाहिए। धर्म से डिगते हुए को उसमें स्थित करना हमारा परम कर्तव्य है और ऐसे अनुमोदना के भावों से सातिशय पुण्य का बंध होता है।

अजीव अधिकरण से आस्त्रव

निर्वर्तना–निक्षेप–संयोग–निसर्गाद्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम्।।9।।

अब अजीव अधिकरण के भेद बतलाते हैं। इनसे आस्त्रव कैसे होता है, उसके आधार की चर्चा चल रही है।

निर्वर्तना, निक्षेप, संयोग और निसर्ग। निर्वर्तना अर्थात् रचना, संरचना–बनाना। बनाने को निर्वर्तना कहते हैं। निक्षेप अर्थात् धरना, रखना। संयोग अर्थात् मिलना और निसर्ग अर्थात् प्रवृतियाँ। निर्वर्तना के दो, निक्षेप के चार संयोग के दो और निसर्ग के तीन भेद होते हैं।

निर्वर्तना अर्थात् शरीर, मन–वचन–काय और श्वासोच्छ्वास आदि की संरचना का होना। ये अजीव अर्थात् पौद्गलिक संरचना है, उससे कर्म के आस्त्रव पर असर पड़ता है। मिट्टी के चित्र बना दिए, मॉडल बना दिए यह पौद्गलिक संरचना हैं, उनसे भी आस्त्रव में फर्क पड़ता है। जैसे आटे का मुर्गा काटने पर भी मुर्गा काटने का पाप लगता है। इसलिए बहुत सारे लोग इस अजीव अधिकरण को ध्यान में रखकर ऐसी वस्तुओं पर पैर नहीं रखते हैं, जो सचित्र होती हैं अर्थात् जिन पर चित्र बने होते हैं, जिन पर अक्षर बने हुए होते हैं त्यागी–व्रती, संयमी जन ऐसी चादर आदि पर नहीं बैठते है; जिन पर हाथी, घोड़े, चिड़िया आदि बने हुए रहते हैं; क्योंकि उससे भी हिंसा का पाप लगता है। हिंसक चित्रों पर हाथ नहीं रखते हैं। उसमें दोष लगता है।

निक्षेप में पदार्थ को उठाने–रखने संबंधी सावधानी की बात कही गई है बिना देखे उठा लेना, असावधानी से उठा लेना, जल्दी–जल्दी उठाना, बिना देखे रखना, ये सब निक्षेप है।

संयोग दो प्रकार के होते है –

1 **भक्तपानसंयोगाधिकरण** आहार और पानी को एक दूसरे में मिला देना।

2 **अपकरणसंयोगाधिकरण** इसमें मुनिराजों के कमंडलु आदि के संयोग आदि की बात कही हैं।

निसर्ग में मन-वचन-काय इनकी प्रवृतियों की बात कही। इन सबसे कर्मों के आस्रव पर असर पड़ता है। कर्मों के 108 प्रकार से आस्रव होते हैं।

108 कारण की वजह से 108 प्रकार से आस्रव होते है; लेकिन आस्रव जो हुआ वह 8 प्रकार के कर्मों का होता है। जो 8 प्रकार के कर्म होते हैं, उन्हें द्रव्यकर्म कहते है। 108 प्रकार का आस्रव भाव कर्म की अपेक्षा से बताया गया है।

भावभासना तो अवश्य होनी चाहिए 'अधिकरणं जीवाजीवा:' अर्थात् जो कर्म बंधते हैं उसमें जीव-अजीव अधिकरण होते हैं। अधिकरण का भावभासन होना चाहिए। किसी भी शब्द का जब तक भावभासन नहीं होगा तब तक उस शब्द को हम फील नहीं कर सकेंगे। भावभासन अर्थात् उस शब्द को अनुभव करना। जैसे हमने कहा शरीर और आत्मा अलग-अलग हैं इसे अनुभव करना होता है। हम जिस समय चल रहे हैं उस समय हमें अनुभव होता है कि शरीर अलग चल रहा है और मैं अलग चल रहा हूँ।

जब हम देख रहे हैं तब अनुभव कर रहे हैं कि चक्षु का काम अलग है और देखने वाले हम अलग हैं अर्थात् मैं चक्षु से नहीं ज्ञान से देख रहा हूँ। मैं कान से नहीं बल्कि ज्ञान से सुन रहा हूँ। हम अनुभव नहीं कर रहे हैं इसलिए यह शाब्दिक ज्ञान तो है लेकिन भावभासन वाला ज्ञान

नहीं है। भावभासन में शब्द नहीं चाहिए, भावभासन तो अनुभव का विषय है। भावभासन तो हम सब करते हैं किंतु जिनवाणी के अनुसार नहीं। जगत् के पदार्थों का तो हम सबको भावभासन है। मिर्च कितनी है, नमक कितना है, इसका कैसा स्वाद होना चाहिए था। कितनी सब्जी में कितना नमक डलेगा इन सबका हमें भावभासन है। दूध को मीठा करने के लिये कितनी शक्कर डलेगी इसका तो हमें भावभासन है। यदि भावभासन नहीं हो तो हम एक व्यक्ति की सब्जी में 2-4 चम्मच नमक डाल देंगे।

हम रोड़ क्रॉस कर रहे हैं और हमें इस बात का भावभासन है कि रोड़ पर चलती हुई गाड़ी जो सामने से आ रही है वह कितनी देर में कहाँ से कहाँ पहुँचेगी और हम कितनी देर में रोड़ क्रॉस कर लेंगे। यदि इस बात का भावभासन नहीं हो तो एक्सीडेंट हो जायेगा। कर्म सिद्धांत का जो प्रकरण चल रहा है उसका भावभासन होना चाहिए, अनुभव होना चाहिए कि क्या विषय चल रहा है। कर्म कैसे बंधते हैं, भावकर्म क्या होता है, द्रव्य कर्म क्या होता है, नोकर्म किसे कहते हैं? हम अपनी नित्य जीवनचर्या में इन बातों को महसूस कर रहे हैं यदि नहीं करते हैं तो और अधिक चिंतन करने की जरूरत है।

जीव-अजीव अधिकरण कर्म का आधार है इसका तात्पर्य यह है कि कर्म का आस्रव होने में जीव तथा अजीव आधार बनते हैं। हमने शब्द में तो इसे बता दिया। आप कहेंगे कि जीव मंदिर में बैठकर भी पाप बाँध सकता है और घर में बैठकर भी पुण्य बाँध सकता है क्योंकि यही चर्चा हम पिछले प्रकरणों में करके आए हैं कि जैसे भाव होंगे वैसा कर्म बंधेगा। घर बैठकर भाव अच्छे हैं तो पुण्य बंध रहा है। मंदिर में बैठकर भी भाव बुरे हैं तो पाप बंध रहा है।

पवित्र स्थान का भावों पर प्रभाव

कोई व्यक्ति यह बात कहे कि मंदिर में कोई खास बात नहीं है कहीं भी बैठो बस भाव शुद्ध होने चाहिए। चाहे दुकान पर बैठें, व्यापार में लगे रहें, घर-गृहस्थी में रहें, हम तो भाव अच्छे रखते हैं, मंदिर आदि का चक्कर नहीं लगाते; क्योंकि समय बहुत बर्बाद होता है। मन्दिर वाले पण्डितों को बुला लेते हैं। अब तो साल में 2-4 बार बुलाने लग गए। इनके तो ये नाटक रोज ही चलते हैं। आज ये आये हैं कल दूसरे आयेंगे। फिर दस लक्षण मनायेंगे। अब चैत्र के दस लक्षण मनाना भी प्रारम्भ कर दिए। भादों का एक कम पड़ता था क्या? खैर जो भी है; लेकिन हम तो अपने भाव शुद्ध रखते हैं। उनसे कहते हैं कि सुनो, यह जो अधिकरण की चर्चा यहाँ की है, हम जिस माहौल में बैठे हुए हैं वह हमारे कर्म आस्रव का आधार बनता है।

यद्यपि यह बात बिल्कुल सत्य है कि घर में रहकर भी पुण्य बाँध सकते हैं और मंदिर में रहकर भी पाप बाँध सकते हैं लेकिन मंदिर पुण्य बंधन का स्थान विशेष है और घर, गृहस्थी, जंजाल पापबंध का स्थान विशेष है। जिस माहौल में उठेंगे-बैठेंगे, जिस संगति में रहेंगे, जिस क्षेत्र में जायेंगे वह क्षेत्र प्रभाव डाले बिना नहीं रहता है। जिनमंदिर में मन को एक अलग ही शांति मिलती है। जिन क्षेत्रों से ज्ञानी धर्मात्मा पुरूषों ने गमन किया हो, जो स्थान ज्ञानी धर्मात्मा पुरूषों से स्पर्शित होकर परिणम रहा हो। समझ लीजिए वहाँ की पवित्रता कुछ अलग ही प्रकार की होती है। वह जगह कण-कण से पवित्र है।

बाहर की वर्गणाएँ भी उनसे स्पर्शित होकर पवित्र होती हैं। स्थान का बहुत प्रभाव पड़ता है। जैनदर्शन तो ऐसा कुछ नहीं कहता है पर

वर्गणाओं के संबंध में लोगों की इस प्रकार की भी मान्यता रहती है। भाषा, आहार, मन आदि पौद्गलिक वर्गणाएँ हैं अर्थात् इन सब वर्गणाओं में पुद्‌गल के परमाणु हैं। निमित्त-नैमित्तिक संबंध भी ऐसा है कि जब वे हमसे स्पर्शित होते हैं तब उनका प्रभाव भी हम पर पड़ता है। जिस जगह पर कोई अन्य व्यक्ति एक दो घंटे से बैठा हो उस जगह पर ब्रह्मचारी, त्यागी, व्रती लोग बैठते नहीं हैं। मुनिराज जहाँ बैठते हैं वे पहले वहाँ पिच्छी से साफ करते है। धूप से छाया में, छाया से धूप में आने पर पिच्छी से परिमार्जन करते है। जिससे उन वर्गणाओं का प्रभाव न पड़े। निमित्त-नैमित्तिक संबंध इस प्रकार का हुआ करता है।

सम्मेद शिखर जी, बुंदेलखंड, दक्षिण भारत जहाँ विशाल-विशाल प्रतिमाएँ हैं। वहाँ जाकर बैठते हैं तो कितने अच्छे भाव बनते हैं यह अजीव अधिकरण कह रहा है। हमारे परिणाम कैसे होंगे इसका इन सब परिस्थितियों से फर्क पड़ता है। हम टी.वी. के सामने बैठे हैं और हम कह रहे हैं कि हम पुण्य बाँध लेंगे। पण्डितजी एक बात बताइए कि हर अंतर्मुहूर्त में पुण्य से पाप और पाप से पुण्य बंधता है यह तो पक्की बात है। यदि हम तीन घंटे मूवी देखेंगे तो क्या बीच में पुण्य भी बंधेगा; बिल्कुल बंधेगा और एक बात बतलाइए तीन घंटे हम आपके मंदिर में आए तब भी पाप बंधेगा कि नहीं बंधेगा? बिल्कुल बंधेगा; तो फिर दोनों एक ही है कहीं भी जाओ।

लेकिन ऐसा नहीं है। मंदिर आदि स्थानों पर पुण्य की विशेषता अधिक है और सिनेमा आदि स्थानों पर पाप की विशेषता अधिक है। अधिकरण में यह कहना चाह रहे हैं कि आप अच्छे माहौल में रहिए, क्योंकि संगति का असर कर्म-बंधन पर पड़ता हैं। जब हम कहते हैं कि

अच्छे लोगों के बीच में उठना बैठना चाहिए। जहाँ हम जाते हैं वैसा सर्कल बनता है उनके विचार, उनका चिंतन, उनकी सोच आदि का आदान-प्रदान होता है, इन सबको यहाँ अधिकरण कह रहे हैं। जीव और अजीव हमारे कर्म आस्रव में निमित्त बनेंगे। और फिर हमारे मन, वचन, काय, समरंभ, समारंभ, आरंभ एवं कृत कारित और अनुमोदना के आधार पर कर्म बंधेंगे।

समझ अपनी योग्यता से आती है

ज्ञानावरणी कर्म क्या है? दर्शनावरणी कर्म क्या है? हमारा जो नॉलेज है, हम जो कुछ भी जानते हैं। कौन व्यक्ति कितना जानेगा, कौन व्यक्ति कितना समझेगा, किसके कितना समझ में आयेगा ये समझाने वाले पर निर्भर नहीं करता है। ये आपकी व्यक्तिगत योग्यता पर निर्भर करता है और उसमें निमित्त ज्ञानावरणी कर्म है। एक शिक्षक समझा रहे हैं और क्लास में 40 विद्यार्थी पढ़ रहे हैं, सबको एक जैसा समझ में नहीं आता। कोई टीचर जिसने 20 वर्ष पहले पढ़ाया था और वह विद्यार्थी अगर किसी अच्छी पोस्ट पर चला गया या कलेक्टर बन गया तो टीचर कहता है कि यह मेरे द्वारा पढ़ाया गया है, तब कोई कहता है कि हमने ऐसा सुना है कि एक व्यक्ति जो सड़क पर ठेला चलाता है वो भी आपके द्वारा पढ़ाया गया है। इसका आशय है कि उस टीचर ने सबको एक जैसा पढ़ाया था लेकिन एक ज्ञानवान बन गया, अच्छी पोस्ट पर चला गया और एक सड़कों पर ठेला चला रहा है; यह पढ़ाने वालों पर निर्भर नहीं करता है। अपितु सीखने वाले की स्वयं की योग्यता पर निर्भर करता है।

सबकी अपनी-अपनी समझ होती है। किसी व्यक्ति को उसके

पिताजी जीवनभर समझाते रहे कि बेटा स्वाध्याय कर, प्रवचन सुनने के लिये जाया कर, लेकिन वह नहीं समझा और अचानक पिताजी का स्वर्गवास हो गया और उस की समझ में आनी थी तो अपने आप ही आ गयी। अब उसको कौन समझा रहा है। समझाने वाले ऋषभदेव जैसे तीर्थंकर थे, तब मारीचि को समझ में नहीं आई और जब उस जीव में समझने की योग्यता आई, तब शेर की अवस्था में दो साधारण से मुनिराज उधर से गुजर रहे थे तब उनके समझाने से समझ में आ गयी, तो किसके समझाने से क्या समझ में आयेगा, यह हमारे ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम और ज्ञान की योग्यता पर निर्भर करता है।

ज्ञानावरण व दर्शनावरण का स्वरूप

ज्ञानावरण कर्म पुद्गल है। द्रव्यकर्म आठ प्रकार के हैं और उनमें से पहला ज्ञानावरण कर्म है, दूसरा दर्शनावरण है। ज्ञान+आवरण, आवरण अर्थात् आच्छादित करना या ढकना। ज्ञान को जिसने ढक दिया। दर्शन+आवरण, अर्थात् दर्शन को जिसने ढक दिया। इसका अर्थ है ज्ञान और दर्शन को जो ढक दे, उस कर्म का नाम है ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म। जब ज्ञान ढक गया तब क्या होगा, हम ज्ञान नहीं कर पायेंगे। ज्ञानावरण कर्म जो पुद्गल था और ज्ञान जो मेरा स्वभाव है। मेरा जो ज्ञान स्वभाव प्रकट होता है; यह ज्ञानावरण कर्म उसको ढकता है और जब ज्ञानावरण कर्म उसको ढकता है तो ज्ञान नहीं हो पाता है। हम समझ नहीं पाते हैं।

जिसके जितना तीव्र ज्ञानावरण कर्म का उदय होगा उस व्यक्ति की समझ उतनी कम होगी। जिस व्यक्ति के जितने अधिक ज्ञानावरण कर्म का उदय आता जायेगा, उसकी स्मृति उतनी कम होती जाएगी।

लोग कहते हैं कि अनेक बार पढ़ने पर भी हमें याद नहीं होता, समझ में नहीं आता। इन सब के पीछे क्या कारण है? कौन है ऐसा जिसकी वजह से हम याद नहीं कर पाते। कोई अच्छे डॉक्टर होंगे तो वो कहेंगे कि आप रोजाना बादाम खाएँ। बादाम खाने से स्मरण शक्ति बढ़ेगी। अरे नहीं, बादाम से कुछ होने वाला नहीं है। ज्ञानावरण कर्म बदलने चाहिए। ज्ञानावरण कर्म मंद होना चाहिए। ज्ञानावरण कर्म घटता हुआ होना चाहिए तब हमारा ज्ञान बढ़ेगा। ज्ञानावरण कर्म बढ़ेगा, तब ज्ञान घटेगा क्योंकि ये आवरण है। ज्ञान ज्यादा है इसका मतलब ज्ञानावरण कर्म कम है। शास्त्रों की भाषा में इसे ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम कहते हैं। दो शब्द हैं एक है ज्ञानावरणी कर्म का उदय, दूसरा शब्द है ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम।

ज्ञानावरण का स्वरूप

ज्ञानावरण कर्म के उदय में ज्ञान कम होगा और ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम में ज्ञान बढ़ेगा। हम यह समझ ही नहीं पाते थे कि इतना पढ़ने के बाद भी हमें याद क्यों नहीं होता? इसका असली कारण तो ज्ञानावरणी कर्म का उदय है। ये ज्ञानावरणी कर्म हमें ही क्यों परेशान कर रहा है ये परदा हमारे ज्ञान पर ही क्यों आ गया? हम ऐसा सोचते हैं कि इस पर्दे को मेरे ज्ञान से हटाकर किसी और के ऊपर डाल दो। यह ज्ञानावरण कर्म मेरे पीछे ही क्यों पड़ा है। कुछ लोग तो ऐसा भी कहते है कि बचपन में अथवा युवावस्था में तो बहुत याद रहता था; लेकिन उम्र बढ़ने पर अब याद नहीं रहता। ये सब ज्ञानावरणीय कर्म के कारण हो रहा है।

यदि हम यह समझ लें कि ज्ञानावरण कर्म क्या कार्य कर रहा है और उस ज्ञानावरण कर्म को कैसे जीता जा सकता है उस ज्ञानावरण

कर्म को कैसे कम किया जा सकता है? ज्ञानावरण कर्म बंधा किस वजह से था उस कारण को पहचान लेवें और हम उससे बचने का प्रयास करें तो हम ज्ञानावरण कर्म के बंधन से बच जायेंगे क्या? क्या भगवान ज्ञानावरण कर्म देते हैं? भगवान के पास गए और उन्होंने देखा कि यह तो बहुत बेकार लड़का है इसे ज्ञानावरण कर्म दे दो; परन्तु इसप्रकार से ज्ञानावरण कर्म किसी के द्वारा सजा के रूप में नहीं दिया जाता। सारा रहस्य इन तीन प्रकार के कर्मों में छिपा हुआ है। हमारे ज्ञानावरण कर्म का उदय ज्यादा क्यों हैं इसका कारण है भावकर्म। किस तरह के भाव होते हैं तो ज्ञानावरणीय कर्म बंधता है और कैसे भाव हों तो ज्ञानावरण कर्म को खत्म किया जा सकता है? हम क्या करें जिससे ज्ञानावरण कर्म नष्ट हो।

कुछ लोग ऐसा भी सोचते हैं कि ज्ञानावरणी कर्म को हटाकर हमें क्या करना है लेकिन जब ज्ञानावरणी कर्म का उदय आता है तब मेमोरी पॉवर चली जाती है स्मरण शक्ति चली जाती है। व्यक्ति भूल जाता है। घर से सामान लेने के लिए निकलता है और बाजार जाकर दुकान पर खड़ा होता है, दुकानदार उससे पूछता है क्या चाहिए, तब कहता है अरे! मैं तो भूल गया, वापिस घर आ जाता है। बाजार में चार चीज़े लेने गए थे, तीन चीज़े ले लीं और चौथी याद ही नहीं आती है। ज्ञानावरणी कर्म का जब तीव्र उदय होता है तो एग्जाम देने के लिए बैठते हैं लेकिन पढ़ा हुआ सब भूल जाते हैं, याद किया हुआ भूल जाते हैं।

हमें क्या याद हो रहा है, क्या याद नहीं हो रहा है, जो याद किया हुआ है वह कितने समय तक याद रहेगा, कितने समय बाद हम उस चीज को भूल जायेंगे। हमें पिछले जन्म का वर्तमान के जन्म में याद क्यों नहीं है। इस जन्म का अगले जन्म में याद रहेगा या नहीं रहेगा।

ज्ञान की सामर्थ्य तो बहुत शक्तिशाली है। ज्ञान की सम्पदा जिसके पास है उसके सारे काम दुनिया में ज्ञान से ही हो जाते है।

ज्ञान का महत्त्व

कौन बनेगा करोड़पति, जिसके पास 15 प्रश्नों के उत्तर होंगे। वही करोड़पति बन सकेगा; क्योंकि अमिताभ बच्चन केवल 15 प्रश्न पूछता है। जिसके पास वह ज्ञान होगा वही जवाब दे सकेगा। जगत् में भी ज्ञान का चमत्कार दिखाई देता है। ये तो भौतिक ज्ञान की बातें है। यदि आध्यात्मिक ज्ञान होगा, यदि आंतरिक ज्ञान होगा, यदि अपना ज्ञान होगा तो उस ज्ञान के साथ में सुख का अविनाभाव संबंध है। दौलतराम जी ने छहढाला में एक लाइन लिखी है –

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण

ज्ञान के समान इस जगत् में सुख का कोई दूसरा कारण नहीं है।

टोडरमलजी ने मोक्षमार्ग प्रकाश में लिखा – यह जीव ज्ञान की हीनता से दुःखी है। दुःख का कारण ज्ञान की हीनता हैं व्यक्तता नहीं, एक व्यक्ति को 101 डिग्री बुख़ार है तो वह तड़फ रहा है। हाथ पैर पछाड़ रहा है बैचेन हो रहा है; बुखार ज्यादा बढ़ गया। 104-105 डिग्री हो गया, अब बिल्कुल शांत हो जाता है क्या वह ठीक हो गया? 101 डिग्री था तब तो हाथ पैर पछाड़ रहा था, तड़फ रहा था। अब 104 डिग्री हो गया तो शांति से पड़ा है। क्या उसको शांति मिली है? नहीं! हमको केवल बाहर से शान्त दिख रहा है। अंदर की बैचेनी तो वही जानता है। वह उस वेदना को व्यक्त नहीं कर पा रहा है।

एकेन्द्रिय जीव कितने दुःखी हैं, दो इन्द्रिय जीव कितने दुःखी हैं, जिनको ज्ञान नहीं है ऐसे असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव कितने दुःखी हैं, उसकी

कल्पना हम नहीं कर सकते हैं। हमें नरक के दु:ख तो दिखायी देते हैं, पर हमें चतुरेन्द्रिय के दु:ख दिखायी नहीं देते हैं। वहाँ पर नरक से ज्यादा दु:ख हैं। हमें लगता है नरक में ज्यादा दु:ख है। खाने-पीने को नहीं है। त्राहि-त्राहि मच रही है। भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी की वेदना है। तिल-तिल करें देह के खण्ड आदि नरक का तो वातावरण ही इतना खराब है लेकिन मक्खी, मच्छर तो चार इन्द्रिय जीव हैं। ज्ञान मंद है। इस ज्ञान की मंदता से उपजे दु:ख की हम कल्पना भी नहीं कर सकते है। छोटे-छोटे बच्चे उनमें समझ नहीं होती है वे जब बोल नहीं पाते हैं जब वे किसी बात को व्यक्त नहीं कर पाते, उनको तकलीफ कितनी होती है उसे हम फील करके देखें। छ: माह का बच्चा जब बोल नहीं पाता है, समझा नहीं पाता है, तब रोता है, तो हमारे पास एक ही उपाय होता है कि इसको दूध पिला दो। भूख लग रही होगी, भूखा होगा और हम क्या समझेंगे। पेट दर्द कर रहा है या सिरदर्द कर रहा है? कुछ समझ में नहीं आता क्योंकि वह बोल नहीं सकता है। व्यक्त नहीं कर सकता। अव्यक्तपने की तकलीफ बहुत होती है और जहाँ ज्ञान होता है वहाँ समझ होती है। ज्ञान सर्व समाधान कारक होता है।

जिसके पास ज्ञान होता है उसके पास हर समस्या का समाधान होता है। आपने अकबर बीरबल के किस्से सुने होंगे। बीरबल बहुत बुद्धिमान थे। उनके पास हर समस्या का समाधान था। हमारे यहाँ ऐसे ही एक और बुद्धिमान व्यक्ति हुए हैं जिनका नाम तेनालीराम था। तेनालीराम राजा के मंत्री थे। बीरबल जैसे बहुत बुद्धिमान थे। जो जितना बुद्धिमान होता है उससे ईर्ष्या करने वाले लोग भी उतने ही ज्यादा होते हैं।

आज का जमाना बड़ा विचित्र है। यदि बच्चे इंटेलीजेंट नहीं हों तो एक समस्या है और ज्यादा इंटेलीजेंट हों तो दूसरी समस्या है; क्योंकि

जितने ज्यादा इंटेलीजेंट होंगे उतने ही ज्यादा उनके दुश्मन बढ़ते जायेंगे। उनसे जलने वाले, क्लास में उनको परेशान करने वाले बढ़ जाएँगे। बहुत समस्या है, हम उनकी समस्या को समझ नहीं सकते है। जितने टॉपर होते हैं उनकी समस्या अलग प्रकार की होती है और मंद बुद्धि हों तो उनकी समस्या अलग प्रकार की होती है।

हम तो यहाँ ज्ञान की चर्चा कर रहे हैं। तेनालीराम बुद्धिमान होने के कारण राजा की समस्याओं का समाधान किया करते थे। राजा को बड़े से बड़े संकटों से बचा लाते थे; लेकिन दूसरे मंत्री उनसे बहुत ज्यादा चिढ़ते थे, जलते थे। वे सोचते थे जब तक यह तेनालीराम है तब-तक राजा की निगाह में हमारी तो कोई कीमत ही नहीं है। हम तो कुछ हैं ही नहीं। बस इसे ही बुद्धिमान समझ रखा है। तब दूसरे मंत्रियों ने एक योजना बनाई कि कैसे भी करके इस तेनालीराम को मार दिया जाए। इसे एक बार राजा की निगाह से उतारना होगा। कई बार प्लानिंग की लेकिन तेनालीराम बहुत बुद्धिमान थे हर बार बच जाते थे। एक बार उनको किसी बहुत बड़े षड़यंत्र में फंसा दिया और राजा के सामने सिद्ध कर दिया कि गलती तेनालीराम की है। राजा मृत्युदण्ड की सज़ा देने के लिए मजबूर हो गया।

राजा को मजबूरीवश तेनालीराम को राजदरबार में बुलाना पड़ा और कहना पड़ा कि तेनालीराम तुम्हारे मेरे ऊपर बहुत उपकार है, तुम मेरे बहुत प्रिय हो, लेकिन यह जो अपराध तुम्हारे द्वारा हुआ है उसमें मुझे न चाहते हुए भी तुम्हें मृत्यु दंड की सज़ा सुनानी पड़ रही है। सारा राजदरबार लगा हुआ था। सारे मंत्री उपस्थित थे। सारे मंत्री खुश हो रहे थे, सोच रहे थे - आज आया ऊँट पहाड़ के नीचे। राजा ने तेनालीराम से कहा तुमने हमारी बहुत सेवा की है तुम्हारा अंतिम समय है। तुम्हें

मृत्युदंड दिया गया है, तुम्हें अपराध की सज़ा तो मिलेगी ही लेकिन इसका निर्णय तुम ही करो कि तुम्हें मृत्युदण्ड किस प्रकार से प्राप्त करना है। क्योंकि मृत्युदंड तो बहुत प्रकार से दिया जाता है। तुम यदि चाहो तो तलवार से काटकर तुम्हें मृत्यु दी जाए, तुम चाहो तो फांसी पर चढ़ा दें, तुम चाहो तो जहर दे देवें। तुम चाहो तो तुम्हें पहाड़ों से नीचे फेंक दें जैसी मृत्यु तुम चाहोगे वैसी ही मृत्यु तुम्हें दी जावेगी। सामने सब लोग खड़े थे उनको मज़ा आ रहा था कि अब पता चलेगा कि यह कौन-सी मौत चुनेगा, मरना तो होगा ही चाहे किसी भी तरह से मरे। तेनालीराम ने कहा महाराज मैं जैसे मरना चाहूँ वैसे ही मारोगे आप? राजा ने कहा, हाँ! जैसा तुम बोलो। तेनालीराम ने कहा महाराज क्षमा करे! लेकिन मैं बुढ़ापे की मौत मरना चाहता हूँ। इस तरह तेनालीराम बच गया। मौत सामने दिखायी दे रही है उस मौत से भी यदि कोई बचाकर ला सकता है तो वह हमारा ज्ञान ही है। हर संकट से बचाने की यदि किसी में सामर्थ्य है तो वह हमारा ज्ञान है।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ज्ञानावरण कर्म ने कितनी भी कोशिश क्यों न की हो, पर वह हमारे ज्ञान को पूरी तरह से ढक नहीं पाया है। यह स्वभाव की ताकत है कि ज्ञानावरण कर्म हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ पाया। ज्ञानावरण कर्म क्यों बंध जाता है इसके सूत्र में छह कारण बताए हैं। ज्ञानावरण कर्म से यदि बचना है तो इन छह कारणों से बचना होगा। ज्ञानावरण और दर्शनावरण दोनों कर्मों का स्वरूप साथ में हैं।

तत्प्रदोषनिह्नव-मात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः।। 10।।

ये वे कारण है जिन्हें समझकर हम यह जान सकते हैं कि आखिर आज-कल हमारी याददाश्त कमजोर क्यों हो रही है और हम अपने

जीवन में ऐसे क्या काम कर रहे हैं जिससे हम दूसरे का नहीं बल्कि अपना ही नुकसान कर रहे हैं, अपने ही ज्ञान पर आवरण डाल रहे हैं। हमें उन कारणों से बचना है, सावधान रहना है। पहला शब्द है **प्रदोष**। दूसरा है **निह्नव**। तीसरा–**मात्सर्य**। चौथा–**अंतराय**। पाँचवा–**आसादन** और छठवा–**उपघात**। ये छह कारण ज्ञान और दर्शन में बाधा देते हैं। इन छह की वजह से ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म बंधता है। ज्ञान पर आवरण आता है।

जब कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है इसका अर्थ है कि ज्ञानावरण कर्म का उदय है और जब थोड़ी देर में कुछ समझ में आ जाए तो इसका अर्थ है कि यह – ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम है। जब उदय है तब तक समझ में नहीं आएगा और जब क्षयोपशम खुलेगा तब अपने आप समझ में आ जाएगा।

प्रदोष का स्वरूप

प्रदोष अर्थात् ज्ञानियों की प्रशंसा नहीं सुहाना। कोई व्यक्ति किसी ज्ञानी की प्रशंसा कर रहा है और हमें वह प्रशंसा बर्दाश्त नहीं हो रही है इसका मतलब है कि हम ज्ञानावरण कर्म बांध रहे हैं।

ज्ञानी कोई भी हो सकता है। किसी भी क्षेत्र का ज्ञानी हो सकता है। किसी ने कहा कि यह बहुत अच्छे इंजीनियर है इन्हें अपने क्षेत्र की बहुत नॉलेज है और हमने प्रतिक्रिया की, कि इसमें क्या बड़ी बात है यह तो सामान्य सी बात है। जब हमने यह कहा कि कुछ ज्ञान नहीं है इसका अर्थ हम ज्ञानावरण कर्म का बंधन कर रहे हैं। ज्ञानावरण कर्म पर आवरण क्यों आया और यह आवरण कैसे हटे इस सूत्र में यह बताया गया है। इस सूत्र का मर्म यह है कि ज्ञान की, ज्ञानियों की, ज्ञान में

प्रयोग आने वाले साधन–सुविधाएँ उन सबकी विराधना हमसे हुई है तब हमें ज्ञानावरणी कर्म बंधा है।

जिनवाणी ज्ञान का माध्यम है, हम जिनवाणी को अपने सिर पर रखते हैं। बहुत बहुमान पूर्वक उठाते हैं। यदि जिनवाणी को कोई व्यक्ति फाड़ता है, असावधानी से उठाता है, रखता है, इसका मतलब तीव्र ज्ञानावरणी कर्म बंध रहा है। ज्ञान की विराधना से ज्ञानावरणी कर्म बंधता है। हम बचपन में अपने बड़े–बुजुर्गों से सुनते थे कि किताब को संभाल कर रखना, किताब को पैर नहीं लगाते, किताब को जमीन पर नहीं रखते, यह विद्या है। वे लोग ऐसा क्यों कहते थे क्योंकि उन्होंने कॉपी–किताब की विनय करना सीखा है। हम यदि उसकी अविनय कर रहे हैं तो इससे हमें ज्ञानावरणी कर्म बंध रहा है और हम यदि उसकी विनय कर रहे हैं तो ज्ञान खुल रहा है।

जिनवाणी की विनय ज्ञान के द्वार खोलती है और अविनय द्वार बंद करती है। ऐसा ज्ञानावरणी कर्म भी बंधता है कि व्यक्ति अपना नाम तक भूल जाता है। हम कितने ही डॉक्टरों को दिखा लें, कितनी ही दवाइयाँ खा लें, उससे कुछ भी नहीं होगा; क्योंकि गड़बड़ी तो अंदर में है। उदय खराब चल रहा है, दवाइयाँ इसमें क्या करेंगी। इसके विपरीत कोई व्यक्ति पूजन स्वाध्याय आदि कर रहा है, और कोई व्यक्ति पूजन की पुस्तकें विनयपूर्वक रख रहा है तो इसका अर्थ है कि वह ज्ञान की आराधना कर रहा है।

आचार्य कुंदकुंद पूर्वभव में ग्वाला थे, एक ग्वाले का जीव जिसे पढ़ना नहीं आता था। एक अक्षर जिसको समझ में नहीं आता था लेकिन जैसे ही उस ग्वाले ने जलते हुए वन के मध्य एक वृक्ष के कोटर

में जिनवाणी देखी तब उस जिनवाणी को मुनिराज के लिए भेंट कर दी। उसके फल में वह ग्वाला, कुंदकुंदाचार्य बन गया। **ज्ञान की आराधना का फल केवलज्ञान है और ज्ञान की विराधना का फल अक्षर के अनन्तवे भाग ज्ञान है; जो निगोद में होता है।** जीव निगोद में चला जाता है, ज्ञानहीन हो जाता है, समझ नहीं रहती है। चक्षु इन्द्रिय संबंधी ज्ञान नहीं रहता है। रसना, घ्राण, कर्णेन्द्रिय संबंधी ज्ञान नहीं रहता है। ज्ञान का दुरूपयोग किया तो ज्ञान हीन हो जायेगा और ज्ञान का सदुपयोग किया तो ज्ञान बढ़ता जायेगा।

किसी जगह पूजन-विधान चल रहा है और किसी ने हमसे कहा कि जो विद्वान आए हैं, वे बहुत ज्ञानी है और हम कहने लगें कि क्या ज्ञानी हैं उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं है। हमारे पास बैठो हम आपको ज्ञान देते हैं। इससे भी ज्ञानावरण कर्म बंध रहा है। यह विराधना कर रहा है। इसको पता नहीं है कि वर्तमान में हमें थोड़े से ज्ञान का अभिमान हो रहा है अगले कुछ ही समय में यह ज्ञान कैसे बदल जाएगा इसका पता भी नहीं चलेगा। थोड़े ही समय में यह जीव निगोद में चला जायेगा। दो इन्द्रिय हो जायेगा, चार इन्द्रिय हो जायेगा। सुनने की सामर्थ्य नहीं रहेगी। आज जब सुनाने वाले मिल रहे हैं तब सुनना नहीं चाहता है; कहता है कि मैंने सब सुन रखा है। सुनने का भाव नहीं आ रहा है, यह**प्रदोष** है। ज्ञानिजनों की प्रशंसा नहीं सुहाना, बस ऐसा परिणाम होना प्रदोष है।

निह्नव का स्वरूप

निह्नव का अर्थ है छिपाना, ढक देना, बताना नहीं, दूसरों को पता नहीं लग जाए। कभी-कभी मन में ऐसा भाव आता है कि दूसरे को इसका ज्ञान नहीं हो जाए। पढ़ने-लिखने वाले बच्चों में यह आदत

अक्सर पायी जाती है। हम सब लोग पढ़ते-लिखते तो हैं। परीक्षा का समय है। हमें कोई बात पता है तब हम सोचते हैं कि किसी को बताओ ही मत। हम उसको बता देंगे तो उसका ज्ञान बढ़ जायेगा और उसके ज्यादा अंक आ जायेंगे। इस तरह व्यक्ति ज्ञानावरण कर्म बाँध लेता है। सावधान और सतर्कता बरतने की जरूरत है। ज्ञान की ऐसी विशेषता होती है कि वह बांटने से बढ़ता है।

'बांटन वारे को लगे ज्यों मेंहदी को रंग'

जो बाँटता है उसे मेंहदी का रंग अपने आप लग जाता है। जो सिखाता है वह अपने आप सीख जाता है आप सिखाओ आप बताओ, आप प्रचार-प्रसार करो, आप लोगों को समझाओ यदि ज्ञान को बढ़ाना चाहते हो तो ज्ञान का प्रचार-प्रसार करो।

निह्नव अर्थात् छिपाना। यदि हमने ज्ञान को छिपाया। अपने प्रगट ज्ञान को, प्राप्त ज्ञान को किसी के द्वारा पूछे जाने पर भी नहीं बताया। हमने कोई बात बोली और सामने वाले ने पूछा कि आपने कहाँ पढ़ी और हमने नहीं बताया। हमने सोचा यदि बता दिया तो यह और ज्यादा पढ़ लेगा, मैं तो थोड़ा ही पढ़ पाया। ऐसा विचार करके नहीं बताना यह निह्नव नाम का दोष है। जो ज्ञानावरण कर्म के रूप में बंध रहा है जो ज्ञानावरण कर्म की वृद्धि कर रहा है।

मात्सर्य का स्वरूप

मात्सर्य का अर्थ है ईर्ष्या। किसी को अपने ज्ञान का घमंड है तो कहता है कि मैं नहीं बताता। उसने अपने ज्ञान का घमंड किया लेकिन कितने दिन? यह ज्ञान कितने दिन का है। एक चोट सिर पर पड़ती है और सारी याददाश्त चली जाती है। इस क्षयोपशम ज्ञान का क्या घमंड करें। इस

क्षयोपशम ज्ञान में कुछ दम नहीं है। अच्छा-भला ज्ञानी आदमी, अच्छा-भला विद्वान थोड़ी-सी नस ढीली हो गई और सब कुछ खत्म हो जाता है। इसी का नाम मात्सर्य है। यदि घमंड किया है तो ज्ञानावरण कर्म बंधता रहेगा।

अंतराय का स्वरूप

अंतराय का अर्थ है विघ्न डाल देना। किसी को पढ़ने नहीं देना। पढ़ने में बाधा उत्पन्न करना। कोई व्यक्ति कुछ पढ़ रहा है और उससे कह देते हैं कि बाद में पढ़ लेना और हमने पुस्तक बंद करवा दी। कोई व्यक्ति स्तोत्र पढ़ रहा है और हमने बंद करवा दिया। कोई व्यक्ति समयसार पढ़ रहा है और हमने रोक दिया। हमें लगता है कि मैंने उसको रोक दिया मेरी ताकत के सामने उसने अपनी किताब बंद कर दी।

तो कहा है कि तुमने जो वचनों से तीर चलाया था वह तीर सामने वाले व्यक्ति पर नहीं लगा वह तीर उमास्वामी आचार्य पर लगा है। मुझे पद्मपुराण का प्रसंग याद आ रहा है। रावण कैलाश पर्वत पर बहुरूपणी विद्या सिद्ध कर रहा था। शांतिनाथ भगवान की भक्ति में तल्लीन था। बड़ी लगनता से साधना-तपस्या कर रहा था। सोलहवे तीर्थंकर की प्रतिमा सामने विराजमान थी और समस्त विद्याएँ, शक्तियाँ वे सब बाहर खड़ी हुईं थीं तभी लक्ष्मणजी अपने खेमे से आए और धनुष बाण निकालने लगे और सोचने लगे कि आज अच्छा मौका है, आज रावण को छोड़ूँगा नहीं।

रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण से कहा कि क्या कर रहे हो? ऐसी गलती दुबारा मत करना। क्या करने जा रहे हो, तुम्हें पता भी है तुम्हारे द्वारा चलाया गया तीर शांतिनाथ भगवान को लगेगा। लक्ष्मण ने कहा क्या

मेरा निशाना इतना कमजोर है? मेरा निशाना इतना भी कमजोर नहीं है कि रावण पर निशाना लगाऊँ और थोड़ा-सा चूक जाए और भगवान को लग जाए। ऐसा कैसे होगा? रामचन्द्र जी ने कहा तुम समझे नहीं कि मैं क्या कहना चाहता हूँ। तुम्हारा निशाना तो कमजोर नहीं है लेकिन जिस जगह तुम्हारा निशाना लगेगा उस हृदय में प्रभु शांतिनाथ विराजमान हैं।

इसी तरह कोई व्यक्ति जिस समय प्रभु महावीर की भक्ति कर रहा है उस समय भगवान महावीर उसके हृदय में बैठे हैं। कोई व्यक्ति जिससमय तत्त्वार्थसूत्र पढ़ रहा है उस समय उसके हृदय में उमास्वामी आचार्य बैठे हैं और जिससमय कोई व्यक्ति समयसार पढ़ रहा है उस समय उसके हृदय में कुंदकुंदाचार्य बैठे हैं। पढ़ते हुए को कभी विघ्न मत डालो, उन्हें कभी विचलित मत करो। परेशान मत करो। उन्हें पढ़ने दो, स्वाध्याय करने दो। ज्ञान की आराधना करने में हम उनका सहयोग करें, अंतराय नहीं। अंतराय कई तरह से होते हैं। हॉस्टल में जो छात्र पढ़ते हैं उन्हें कई बच्चे पढ़ने नहीं देते। कभी लाइट बंद कर देते हैं तो कभी उनके ध्यान को भटकाने के लिए कॉमिक्स रख देते हैं। मतलब सामने वाले को पढ़ने नहीं दिया। उसमें यदि बाधा डाली है तो अंतराय नामक दोष लगेगा और उससे ज्ञानावरण कर्म का बंधन होगा।

आसादन का स्वरूप

आसादन का अर्थ है कि कोई किसी को कुछ समझा रहा था, बता रहा था और हमने उसे रोक दिया। कोई बात किसी दूसरे को पता नहीं लग जाये इसलिये स्वयं तो नहीं बता रहा; परन्तु कोई दूसरा बता रहा है तो उसको भी रोक देना इत्यादि आसादन है और इससे ज्ञानावरण कर्म का बंधन होता है।

उपघात का स्वरूप

प्रशंसनीय ज्ञान में दूषण लगाना उपघात है। अथवा ज्ञान को अज्ञान समझकर ज्ञान के नाश का इरादा रखना उपघात है। यदि हम ज्ञानावरण कर्म का बंधन नहीं चाहते हैं तो मुक्त कंठ से हमें उनकी प्रशंसा करनी चाहिए, उनके ज्ञान की प्रशंसा करें। एक साधारण-सा सूत्र है कि ज्ञान की विराधना से ज्ञानावरण कर्म बंधता है तो ज्ञान की आराधना से ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होता है।

स्मरण शक्ति कैसे बढ़ाएँ?

जो 5-5 हजार रुपये का टिकिट लेकर मेमोरी बढ़ाने वाले सेमिनारों में जाते हैं। वहाँ वे न मालूम क्या सिखाएँगे और न मालूम आप क्या सीखकर आएँगे फिर भी मेमोरी बढ़ेगी या नहीं इसकी कोई गारंटी नहीं है; लेकिन ज्ञान को बढ़ाने का एक उपाय है और वह है ज्ञान की आराधना करना। जिनवाणी की विनय करना। जिनवाणी पर कवर चढ़ाना, सम्भाल कर रखना, बहुत बहुमान पूर्वक रखना। जो जितने इंटेलीजेंट होते हैं उनकी कॉपी-किताब भी उतनी ही व्यवस्थित, साफ-सुथरी, सुंदर और नई जैसी होती है, वे अपनी पुस्तकें आदि बहुत सम्भालकर रखते हैं। उनके अक्षर मोतियों जैसे चमकतें हैं और जो अध्ययन में कमजोर होते हैं उनकी पुस्तकें अव्यवस्थित तथा जीर्णशीर्ण होती हैं। इससे भी ज्ञानावरणी कर्म बँधता है।

पूजन करते हैं, बड़े-बड़े विधान करते हैं। विधान करते समय चावल चढ़ाते हैं और वे चावल विधान की पुस्तकों में रह जाते हैं तो उसमें जीव पड़ जाते हैं तथा वे चावल के कण पुस्तक को भी खराब कर देते हैं तथा कभी-कभी इतनी असावधानी से रखते हैं कि वह

पुस्तक मुड़ जाती है, फट जाती है; कभी-कभी जूठे हाथ लगाते हैं, जूठे मुँह बोलते हैं। कोई चीज़ खाई और जूठे मुँह जिनवाणी पढ़ने लग गये। इन क्रियाओं से ज्ञानावरण कर्म बंधता है इसलिए हमें सावधान रहना चाहिए तथा जूठे हाथ नहीं लगाना चाहिए। ज़मीन पर ग्रन्थ आदि नहीं रखना चाहिए। पैर नहीं लगाना चाहिए। हम जहाँ बैठे हैं उससे नीचे जिनवाणी नहीं होनी चाहिए। अपनी नाभि के नीचे जिनवाणी नहीं होनी चाहिए, ऊपर ही होनी चाहिए। यह विनय है।

अब तक हमने ज्ञानियों की निंदा की थी, आज से ज्ञानियों की प्रशंसा करना प्रारम्भ कर दो। हमने किसी को पढ़ने नहीं दिया था, आज से पढ़ने की प्रेरणा देना प्रारंभ कर दो। हमने किसी को पढ़ते हुए देखा और उसमें बाधा उत्पन्न की थी। किसी की किताब छिपा दी थी। आज से ज्ञान में उपयोग आने वाली वस्तुओं को वितरित करो। पुस्तकों को बांटो, पुस्तक पढ़ने के लिए प्रेरित करो। इससे ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होता है और इसके साथ स्तुतियाँ, भक्तियाँ, गाथाएँ, सूत्र, भक्तामर के श्लोक, तत्त्वार्थसूत्र के सूत्र, मेरी भावना, पूजा, पूजाओं के अर्घ्य आदि कंठस्थ करने चाहिए।

जब आप सूत्रादि याद करना प्रारम्भ करेंगे तब प्रारम्भ में पूरे दिन में आपको 2-4 पंक्तियाँ ही याद होंगी पर हम गारंटी देते हैं 2-4 दिन बाद में 1 दिन में 2 श्लोक भी याद होने लग जायेंगे। 10 दिन मेहनत करने पर आपको 8-10 पंक्तियाँ याद होने लगेंगी। आपको 10-12 दिन में, बाद में एक दिन में ही 40 लाइन याद होने लग जायेंगी। ज्ञान में वृद्धि होने लगेगी। विराधना से जो कार्य हुआ था आराधना से उससे विपरीत कार्य होगा, यह तो सीधी-सी बात है। आप कहते हो हमें समझ में नहीं आता, लेकिन अभी आपको यह समझाया यह समझ में

आया है ना? क्यों समझ में आया, कैसे समझ में आया। वह ज्ञान का उघाड़ क्यों हुआ; क्योंकि आप समझने की रूचि लेकर आये, इससे भी ज्ञानावरण कर्म कट रहा है। समझने के उत्साह से भी ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम बढ़ता है। सब जीव समझें, यह बात सबको समझ में आनी चाहिए इस भाव से भी ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम खुलता है।

हमारे भीतर यह भाव आया कि ऐसी धर्म की बातें सब समझें इससे भी ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम बढ़ता है। गुरूदेव को देखो – मात्र चौथी–पाँचवी क्लास तक ही पढ़ाई की थी। छठी कक्षा पूरी नहीं हुई थी। पाँचवी कक्षा तक ही पढ़े थे और उनके पास अच्छे–अच्छे पढ़े लिखे लोग समझने आते थे और वे सबको समझाते थे। सबको समझाने का भाव आता है। मैं भले ही ज्ञानावरण, दर्शनावरण की चर्चा आपके सामने कर रहा हूँ; लेकिन यह ज्ञानावरण कर्म इस जीव का कुछ बिगाड़ता नहीं है यह बात ध्यान में रखना। ज्ञानावरण कर्म जड़ है, पुद्गल है; लेकिन अभी तक जो चर्चा चली उसमें तो ज्ञानावरण कर्म से होने वाले नुकसान के बारे में समझा रहे थे और अब कह रहे हैं कि ज्ञानावरण कर्म कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

ज्ञान की आराधना का फल

यहाँ यह समझना कि ज्ञानावरण कर्म का उदय आना और ज्ञान की मंद रूप होने की अपनी योग्यता इन दोनों में बहुत घना नज़दीकी निमित्त–नैमित्तिक संबंध है। ज्ञान जो मंद हुआ, वह ज्ञानावरण कर्म ने मंद नहीं किया; बल्कि ज्ञान अपनी योग्यता से मंद हुआ और ज्ञानावरण कर्म अपनी योग्यता से उदित हुआ।

ज्ञानावरण कर्म का उदय कर्म में आ रहा है और ज्ञान की पर्याय

ज्ञान में चल रही है। दोनों अपना-अपना कार्य कर रहे हैं और जो इस भेद-विज्ञान को जानता है, उसका ज्ञान इतना उच्च हो जाता है कि वह केवलज्ञानी हो जाता है। हमें सावधान रहना है; क्योंकि हम जाने-अनजाने में ऐसे-ऐसे काम कर जाते हैं, जो विराधना के कार्य है और जिनका हमें ज्ञान ही नहीं है। जबकि हम कितने ही ऐसे काम कर सकते हैं जिससे आराधना के मार्ग पर बढ़ सकते हैं। जिससे हमारी समझ/ज्ञान बढ़ सकता है।

अतएव पाठशाला चलाइए। पाठशाला में पढ़ाइए। पढ़ने के लिए बच्चों को भेजिए। आपका बच्चा यदि पढ़ने में कमजोर है, तो उसे मेरी भावना याद कराइए। उसको कुंदकुंद शतक याद कराइए। उसको छहढाला याद कराइए, तत्त्वार्थ सूत्र याद कराइए। गाथाएँ याद कराइए। इससे यह होगा कि आप उसको याद करवाऐंगे तो आपको भी सहज रूप से याद हो जाएगा और जब उसका चित्त भी उसमें लगेगा, तब उसके भी ज्ञान का क्षयोपशम स्वत: ही खुलेगा। वह तत्त्वज्ञान पढ़ रहा है तो लौकिक शिक्षा में भी इंटेलीजेंट होगा।

भौतिक दुनिया में इंटेलीजेंट होने से धर्म के क्षेत्र में इंटेलीजेंट होगा या नहीं यह नहीं कहा जा सकता; लेकिन धर्म के क्षेत्र में यदि वह बालक इंटेलीजेंट है तो निश्चित रूप से वह बाहरी दुनिया भौतिक दुनिया में भी इंटेलीजेंट बन जायेगा। इधर की योग्यता बढ़ने से उधर की योग्यता भी अपने आप बढ़ जायेगी। इसलिए गलती से भी हमारे द्वारा ज्ञानियों की निंदा नहीं हो। जिनवाणी की विराधना नहीं हो, तत्त्वज्ञान की विराधना नहीं हो, प्राप्त ज्ञान का घमंड नहीं हो, प्राप्त ज्ञान को छिपाने का भाव नहीं हो। जहाँ से हमने सीखा है उसे छिपाने का भाव नहीं आए। अरे! सब सीखें, सब जानें, सब समझें ऐसा भाव यदि हृदय में आयेगा, तो यह

ज्ञानावरण कर्म अपने आप छट जायेगा और जब ज्ञान का आवरण ऊपर से छटता है और ज्ञान बढ़ता है, तब सम्यक्ज्ञान हो जाता है।

अल्पज्ञान से भी सम्यग्ज्ञान हो सकता है

यहाँ एक बात और ध्यातव्य है कि सम्यग्ज्ञान के लिए ज्ञान की अधिकता नहीं चाहिए। ज्यादा ज्ञान नहीं चाहिए, जितना है उसकी निर्मलता चाहिए। प्राप्त ज्ञान पर्याप्त है। यदि आपको ज्यादा कुछ याद नहीं है तो कोई फर्क नहीं पड़ता है, ज्यादा नहीं 'जीव जुदा पुद्गल जुदा' बस इतना-सा हमारे ख्याल में है तो काम हो जाएगा।

बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' कहा करते थे-

देह और आत्मा का पृथक् बोध करलो
और बाकी ज्ञान पेटी में बंद कर धरलो।

बाकी के ज्ञान की जरूरत ही नहीं है। इतना जो ज्ञान प्राप्त है वह पर्याप्त है। अनादिकाल से ज्ञानावरण कर्म कितनी भी तीव्रता से आया हो लेकिन फिर भी मेरी ज्ञान सामर्थ्य ऐसी है कि उस ज्ञान को यह ज्ञानावरण कर्म कभी ढक नहीं पाया। हमारा जो प्रकट ज्ञान है, यदि वह स्वभाव सन्मुख हो जाए तो ज्ञानावरण कर्म को ढूंढते रह जाओगे। सारा का सारा ज्ञानावरण कर्म गायब हो जायेगा।

क्या घाति कर्मों के उदय में भी संयोग प्राप्त होते हैं?

संयोग केवल अघातिया कर्म के उदय से ही नहीं मिलते अपितु घातिया कर्म के उदय से भी संयोग मिलते हैं; यह बात उन लोगों के लिए है जो कि बहुत अभ्यासी हैं। जिन्होंने पहले इस विषय को पढ़ा है उन लोगों के लिए यह सब बात हो रही है। आपने घाति कर्म और अघाति कर्म में अंतर को सुना- पढ़ा होगा, जो घातिया कर्म होते हैं

वे स्वभाव का घात करते हैं और जो अघातिया कर्म होते हैं उनके फल में संयोग मिलते हैं; आपने आज तक ऐसा सुना होगा।

यहाँ कुछ नई बात हो रही है। घातिया कर्म के उदय से भी संयोग मिलते हैं। आप कहेंगे कि शास्त्र के आधार से बात कहो तो मानेंगे, ऐसे तो हम स्वीकार नहीं करेंगे क्योंकि हमें पढ़ते हुए जिंदगी हो गई, हमने भी बहुत कुछ पढ़ा है। घाति कर्म से संयोगों का क्या लेना-देना? आप कहेंगे सारे संयोग अघाति कर्म के उदय से मिलते है। जितने भी नोकर्म प्राप्त होते हैं वे सभी अघाति कर्म के उदय से मिलते हैं।

यहाँ पर विशेष बात यह है कि घातिया कर्म को भी अपना फल देने के लिए नोकर्म का सहारा लेना पड़ता है, नहीं तो घातिया कर्म अपना फल नहीं दे सकते हैं।

गोम्मटसार कर्मकांड में **सिद्धांतचक्रवर्ती नेमिचंद्र आचार्य** ने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय के नोकर्म बताए हैं अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय इन चार घातिया कर्मों के उदय से भी नोकर्म मिलते हैं। नई बात कह रहा हूँ। अभी तक हमने सुना था कि वेदनीय कर्म से अनुकूल-प्रतिकूल संयोग मिलते हैं। नामकर्म से शरीर मिलता है। गोत्र कर्म से ऊँच-नीच कुल मिलता है और आयु कर्म से शरीर में कितने समय तक रहना है यह सब मिलता है; सम्पूर्ण संयोग ही अघाति कर्म के उदय से मिलते हैं और घातिया कर्म सिर्फ स्वभाव का घात करते हैं।

यहाँ इतना विशेष समझना कि घातिया कर्म भी नोकर्म के बिना फल नहीं दे सकते हैं इस बात से हमें यह समझना चाहिए कि घातिया कर्म कितने कमज़ोर हैं जो बिना नोकर्म के फल नहीं दे सकते।

ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्म के नोकर्म

ज्ञानावरण कर्म अपना फल किस तरह से देते हैं? ज्ञानावरण का कार्य है कि व्यक्ति के ज्ञान को ढकना, उसके ज्ञान को कमज़ोर करना, जिससे व्यक्ति ज्ञान नहीं कर पाए। ज्ञानावरण कर्म के नोकर्म क्या-क्या हैं? गोम्मटसार कर्मकांड के पहले अध्याय में ऐसी चर्चा की है कि जैसे चक्षु इन्द्रिय संबंधी मति ज्ञानावरण कर्म का उदय है तो चक्षु इन्द्रिय से नहीं दिखे; उसके लिये आँख में मच्छर आ गया तो यह उसका नोकर्म है। हम पढ़ाई करने बैठे और लाइट चली गई, बिना लाइट के हम पढ़ नहीं पा रहे हैं हमें तत् संबंधी होने वाला ज्ञान का क्षयोपशम था उसके ऊपर आवरण आ गया और वह प्रगट नहीं हो पा रहा है अथवा कान की सामर्थ्य कम हो गई, कहीं विस्फोट हुआ और कान का पर्दा फट गया। अब, जब कान ही सही नहीं है तो ज्ञान क्या करेगा? यह सभी ज्ञानावरण कर्म के नोकर्म हैं।

यदि आँखें सही नहीं हों तो अकेले ज्ञान से हम कुछ नहीं कर सकते हैं। चक्षु इन्द्रिय संबंधी मति ज्ञानावरण कर्म के तीव्र उदय की वज़ह से हमारी चक्षु इन्द्रिय खराब होती है। चक्षु इन्द्रिय की संरचना खराब हो जाती है। चक्षु इन्द्रिय की संरचना, चक्षु इन्द्रिय का आकार-प्रकार, पौद्गलिक संरचना यह सब नामकर्म का काम है, लेकिन जब ज्ञान में वह बाधक या साधक बनती है तब वह ज्ञानावरण कर्म के नोकर्म के रूप में फलित होती है।

प्रकाश, अंधकार आदि जिससे ज्ञान में बाधा उत्पन्न हुई, उसे अंतराय कर्म का उदय कहा। एक होता है कर्म का उदय, और एक होता है कर्म का बंधन। ज्ञानावरण कर्म का बंधन और ज्ञानावरण कर्म का उदय।

जब बंधन होगा तब उदय में आयेगा। बंधन के कारण अलग प्रकार के हैं। उदय में परिस्थितियाँ बनती हैं। जब हम यह कहते हैं कि ज्ञानावरण कर्म का उदय है तब समझना कि ऐसी परिस्थिति बनी है, जिसमें वह व्यक्ति ज्ञान नहीं कर पा रहा है, यह ज्ञानावरण कर्म का उदय है। जब हमने कहा कि ज्ञानावरण कर्म का बंधन है तब समझना कि इसने कुछ ऐसा काम किया है जिसकी वज़ह से ज्ञानावरण कर्म बंध रहा है।

हम ऐसा क्या करते हैं कि जिससे ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्म बंधते हैं सूत्र के माध्यम से हमने पूर्व में उसके कारण बता दिये थे।

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाताज्ञानदर्शनावरणयोः।।10।।

इनसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्म का आस्रव होता है। दूसरे के ज्ञान में यदि बाधा पहुँचायेंगे तो हमारे ज्ञान में भी बाधा आएगी। किसी को मंदिर जाते समय रोकना नहीं, किसी को नींद आ रही है तो उसे जबरदस्ती उठाना नहीं। प्रवचन में कोई सो रहा हो तब तो उसे उठाना; क्योंकि आप सोते हुए को जगाकर अपने ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम बढ़ाने का उपाय कर रहे हो। आप उसकी ज्ञान की उपासना में ज्ञान आराधना में साधक बन रहे हो। आपने उसे पढ़ने समझने के लिए प्रेरित किया। आपने उसे समझाया, पढ़ाया, ज्ञानाभ्यास में लगाया तो शास्त्रों में ज्ञानदान का फल तो केवलज्ञान कहा है।

जो बात हमने धर्म के संबंध में सुनी है उन धार्मिक चर्चाओं का सारांश 2-5 मिनिट में अपने किसी दोस्त को सुना दो। किसी न किसी को सुनाओ, बताओ क्योंकि जब तक वह चर्चा दोहरायी नहीं जाएगी तब तक वह आपके चिंतन का विषय नहीं बनेगी और तब तक हम उसकी गहराई में नहीं जा पाएँगे। यह वास्तविकता है कि इस युग में

यदि किसी का आत्मकल्याण होना है तो उन्हीं का होना हैं जो पढ़ाने वाले हैं। यहाँ पढ़ाने वालों का मतलब है कि जो दूसरों को अध्यापन कराते हैं और स्वयं गहराई से अध्ययन करते हैं। कोई कहता है हमें किसे अध्यापन कराना है, हमें किसे समझाना है। लेकिन जब आप किसी को अध्यापन कराएंगे तो आपका अध्ययन अलग प्रकार से होगा। किसी विषय का आपको विशेषज्ञ बनना हो तो उस विषय अध्यापन का प्रारम्भ कर देना चाहिए। इसप्रकार यहाँ ज्ञानावरण कर्म की चर्चा पूरी हुई।

आखिर हमें इतनी नींद क्यों आती है? अच्छे संयोग हमें कैसे मिलेंगे?

आस्रव किन कारणों से होता है इस संबंध में पीछे दो कर्मों की चर्चा कर चुके हैं अब वेदनीय कर्म की चर्चा कर रहे हैं। शरीर को छोड़कर शरीर के ऊपर और बाहर जितने भी संयोग हमें दिखायी दे रहे हैं वे सब वेदनीय कर्म के उदय से मिले हैं।

वेदनीय कर्म का स्वरूप

चाहे अनुकूल संयोग प्राप्त हुए हों या प्रतिकूल संयोग प्राप्त हुए हों ये सभी संयोग वेदनीय कर्म की ही देन हैं। यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि हमें जो भी वस्तुएँ प्राप्त हुईं हैं वे पुण्य के उदय से मिली हैं या पाप के उदय से मिली हैं? हमें जो भी सम्पत्ति मिली है या आगे मिलेगी वह पुण्य के उदय से मिली है या पाप के उदय से मिली है? 148 कर्म प्रकृतियों में से 100 कर्म प्रकृतियाँ पाप हैं और 68 कर्म प्रकृतियाँ पुण्य रूप हैं। 148 प्रकृतियों में से 80 कर्म प्रकृतियाँ तो पापरूप ही हैं। और 48 कर्म प्रकृतियाँ पुण्य रूप ही हैं। ये कुल 128 हो गईं। अब 20 शेष रह गयी। ये 20 कर्म प्रकृतियाँ जैसे स्पर्श, रस,

गंध, वर्ण और इनके उत्तर भेद ये ऐसी प्रकृतियाँ है जिन्हें आप पुण्य में भी रख सकते हैं और पाप में भी शामिल कर सकते हैं। इसलिए 100 पाप प्रकृतियाँ और 68 पुण्य प्रकृतियाँ इस तरह कुल हो गई 168 कर्म प्रकृतियाँ। ऐसा ही यह गणित है।

स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, आदि इस तरह की प्रकृतियाँ हैं जो कभी पुण्य के उदय से तो कभी पाप के उदय से मिलती हैं। जैसे हमें नीले कलर की शर्ट मिली तो यह पुण्य प्रकृति है या पाप प्रकृति है? यदि हमें नीला कलर पसंद आता है तो यह पुण्य प्रकृति है और यदि हमें नीला कलर पसंद नहीं है तब पापकर्म के उदय से हमें वह कलर मिला है। इस तरह यह प्रकृति दोनों में चली गई। मौसम ठंडा हो रहा है, ऐसा जो अनुभव है वह स्पर्श नामक कर्म प्रकृति का उदय है। यह स्पर्श प्रकृति जिसको अच्छी लग रही है उसके पुण्य का उदय और जिसे यह स्पर्श प्रकृति अच्छी नहीं लग रही, वह सोचता है मौसम खराब हो गया उसके पापकर्म का उदय है। हमें गर्मी लग रही है और दूसरे को ठण्ड लग रही है। हमने स्वेटर पहना है और किसी ने नहीं पहना है। यह सारा पुण्य-पापकर्म रूप प्रकृतियों का बंटवारा है यह सब तो नामकर्म के उदय में जायेगा क्योंकि नामकर्म की प्रकृतियाँ बहुत ज्यादा हैं।

वेदनीय के भेद

वेदनीय कर्म के दो भेद हैं - साता वेदनीय और असाता वेदनीय। साता पुण्य को कहते हैं और असाता पाप को कहते हैं। साता अर्थात् अनुकूलता; जो कार्य हमारे अनुसार हो वह साता है और असाता अर्थात् प्रतिकूलता; जो कार्य हमारे प्रतिकूल हो वह असाता है। असाता कर्म चाहिए या साता कर्म चाहिए। तो हर व्यक्ति को साता कर्म ही चाहिए।

सबको अनुकूलता चाहिए; लेकिन अनुकूलता मिलती क्यों नहीं है? सब हमारे अनुकूल क्यों नहीं हो जाते हैं। हमारे हिसाब से क्यों नहीं चलते हैं। हमारा बच्चा हमें सामने से जवाब क्यों दे देता है? वह जिद क्यों करने लगता है। यहाँ तो दोनों तरफ से हमें ही मार पड़ती है। ऊपर से पिताजी हमें कहते हैं, नीचे से बच्चा हमें कहता है। हम तो बीच में फंस गये, ये कैसी स्थिति है? यह असाता का उदय हमारे माथे पर क्यों आ गया? यह असाता वेदनीय कर्म क्यों बंधता है? इस असाता कर्म के बंधन के पीछे क्या कारण है? किसी को भी असाता नहीं चाहिए, हर कोई असाता को हटाना चाहता है। इत्यादिक प्रश्न हमारे दिमाग में उत्पन्न होते हैं परन्तु असाता को तो हमने ही बांध रखा है। असाता बिना बुलाए नहीं आती है। हमने आगे होकर उसे बुलाया है। हमने जो भाव करने रूप निमंत्रण भेजा था उससे ही असाता कर्म आया है। जब असाता का उदय आता है तब अपना कार्य करके ही जाता है। असाता नोकर्म रूप से अपना फल देकर जाता है। हमारे पास एक ऐसी कला है कि जिससे यह असाता कर्म जीव को दुःखी करने में समर्थ नहीं है। सारा जगत कहता है कि असाता कर्म दुःखी करता है, पापकर्म दुःख देता है। पर दुनिया का कोई कर्म हमें दुःखी करने में समर्थ नहीं है। हम स्वयं से ही दुःखी हैं। कोई व्यक्ति कहता है पैसा नहीं है इसलिए दुःखी हूँ, कोई कहता है इतना नुकसान हो गया, इसलिए दुःखी हूँ।

इसप्रकार कोई संयोग अपने हाथ से निकल गया, उसमें असाता कर्म का उदय है। असाता कर्म का जब उदय आता है तब वह किसी को भी पसंद नहीं आता है। अभी हम व्यवहार अपेक्षा से बात कर रहे हैं, यदि लोकव्यवहार की दृष्टि से बात की जाए तो दुनिया में कोई व्यक्ति हमें सुखी-दुःखी नहीं करता हमारे अपने पूर्वोपार्जित कर्म ही हमें सुखी-दुःखी करते हैं, यह व्यवहार है।

कर्म सिद्धांत को समझने से, असाता वेदनीय कर्म को समझने से, दूसरों के ऊपर दोषारोपण करने की बुद्धि निकल जाती है, बहुत बड़ा फायदा हो जाता है। हमें लगता है कि मैं इसकी वज़ह से परेशान हूँ; लेकिन कर्म सिद्धांत से समझ में आ जाता है कि मैं स्वयं के कर्मों के उदय से दुःखी हूँ। मेरा उदय खराब है। द्यानतरायजी दशलक्षण धर्म पूजन में लिखते हैं–

जे करम पूरब किये खोटे, सहे क्यों नहीं जीयरा।

अर्थात् इस जीव ने पूर्व में जो खोटे कर्म किए हैं उनको क्यों नहीं सहता है? उनको तो सहन करना ही पड़ेगा। कोई व्यक्ति हमें दुःखी नहीं करता है। हम स्वयं से ही दुःखी हैं। यह तो नोकर्म है, ये नोकर्म तो कुछ भी नहीं कर सकते हैं। कोई व्यक्ति सामने जवाब दे रहा है तो क्यों दे रहा है। गहराई से देखेंगे, तो असाता का उदय है, इसलिए सामने से जवाब दे रहा है।

जो व्यक्ति हमें घर–व्यापार में प्रतिकूल दिखायी दे रहा है। हमारे मन के अनुसार नहीं चल रहा है अथवा कोई व्यक्ति या संयोग हमारे प्रतिकूल है, तो यह हमारे असाता कर्म का उदय है। उस व्यक्ति को दोष देने की आवश्यकता नहीं है। हमारे कर्म का उदय ही ऐसा है, इधर उदय बदलेगा और उधर व्यक्ति का स्वभाव बदल जाएगा। समस्या हमारे साथ यह आ रही है कि हम सारा उलटफेर बाहर में कर रहे हैं। इस वस्तु को दूर करो, इस वस्तु को रख लो आदि। इसका अर्थ है हम संयोगो में बदलाव कर रहे हैं। ये संयोग हमारे करने से नहीं; अपितु द्रव्यकर्म से चलते हैं। इनका उदय द्रव्यकर्म पर निर्भर करता है। द्रव्यकर्म का संबंध नोकर्म से है और ये दोनों ही पुद्‌गल पर्याय हैं और

मैं चेतन हूँ। यह उदय लंबा चल रहा है तो प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी बहुत लंबी हैं। इस स्थिति में हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपने भावकर्म को सम्भालें।

यदि भावकर्म को नहीं सम्भालेंगे तो द्रव्यकर्म और प्रगाढ़ रूप से बंधेगा, तथा जब द्रव्यकर्म गाढ़ा बंधेगा तब ये संयोग और भी अधिक प्रतिकूल मिलेंगे।

असाता वेदनीय कर्म स्वयं ने बांधा है। हमें असाता वेदनीय कर्म किसी ने दान नहीं दिया है यह असाता वेदनीय कर्म हमारे द्वारा ही बांधा गया है। असाता के उदय में प्रतिकूलता मिलेगी और प्रतिकूलताएँ कई प्रकार की हो सकती हैं। हमारी घड़ी हमें भारी लग रही है या चुभ रही है तो यह असाता का उदय है। हमें जो कुछ भी ऐसा मिला है जिससे हमें प्रतिकूलता का वेदन हो रहा है, वह असाता कर्म का उदय है।

हमारी अलमारी में जितने भी कपड़े रखे हैं। वे सब वेदनीय कर्म के उदय से हैं। हमारे पास जितने भी चप्पल-जूते हैं, जितना भी सामान है- दरी, चादर, तकिया आदि सब कुछ हमें वेदनीय कर्म के उदय से मिला हैं। हमारे घर में जितने भी बर्तन हैं एक-एक प्याला, कटोरी सब वेदनीय कर्म के उदय से मिले हैं। जिस कर्म का उदय समाप्त हो जाता है वे वस्तुएँ भी हमारे पास से चली जाती हैं। कर्म के उदय का उस वस्तु के साथ में अनुबंध है। कांच की वरनी, प्याले के साथ में जितने समय का अनुबंध है उतने समय तक वह हमारे पास रहेगी उसके बाद वह हाथ से फिसल जायेगी और उसके टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।

एक कुर्ता भी यदि कहीं से फट जाता है तो वह असाता वेदनीय कर्म का उदय है। थोड़ा-सा कहीं से जल जाता है मतलब असाता का उदय

है। बरसात में भींग गए और हम बीमार हो गये तब असाता का उदय है। दिनभर हम इन कर्मों के उदय में झूलते रहते हैं। सुबह से शाम तक, पूरी जिन्दगी चारों तरफ से कर्मों के उदय से घिरी है। सांसारिक अवस्था में कभी-भी यह जीव कर्म के उदय से रहित नहीं होता है। सोते-उठते, खाते-पीते, नहाते-धोते हर समय कर्म का उदय है। घर की एक-एक टाइल्स, दीवार पर यदि एक स्क्रेच भी होता है जिससे हमें वेदन होता है वह हमारे असाता कर्म का उदय है। घर में मेहमान आये साथ में बच्चे भी थे उन्होंने पेन लिया और दीवार पर चित्र बनाना शुरू कर दिया, जिससे हमें तकलीफ होने लगी, यह सब असाता का उदय है।

यदि ऐसी दृष्टि बन जाये, तो जीवन जीने का तरीका ही अलग हो जाये। हमें जीवन ऐसा जीना है कि किसी भी अवस्था में दूसरों पर दोषारोपण नहीं करना है। उस व्यापारी ने ऐसा कर दिया, उस पेंटर ने ऐसा कर दिया, उस महिला ने ऐसा कर दिया, वह ठेकेदार ऐसा काम कर गया, उस कारीगर ने ऐसा काम कर दिया, उसकी वज़ह से ऐसा हो गया, सारा दोषारोपण दूसरों के ऊपर। लेकिन उदय तो हमारे असाता का चल रहा है।

हमें बुरे संयोग ही क्यों मिलते है?

जब हम असाता कर्म नहीं चाहते हैं तब फिर ये बंधता क्यों है? इसके कुछ कारण हैं उमास्वामी आचार्य उन कारणों की चर्चा कर रहे हैं कि यदि हम यह चाहते हैं कि असाता वेदनीय कर्म नहीं बंधे, उदय में नहीं आए तो सर्वप्रथम तो बंधना नहीं चाहिए और बंधन नहीं हो इसके लिए भावकर्म को सम्भालना होगा।

दु:ख-शोक-तापाक्रन्दन-वध-परिदेवनान्यात्म-परोभय-स्थाना-न्यसद्वेद्यस्य।।11।।

कौन-से ऐसे भाव हैं जिनकी वज़ह से यह असाता कर्म बंधता है। तब पहला कारण बताया दु:ख, दूसरा कारण है शोक, तीसरा है ताप, चौथा है आक्रन्दन, पाँचवा है वध, छठा है परिदेवन।

दु:ख का स्वरूप

पहला शब्द है दु:ख अर्थात् पीड़ा, कष्ट, यदि हम दूसरे व्यक्ति को कष्ट देते हैं, यदि हमारी वज़ह से दूसरा व्यक्ति परेशान होता है। तब हम असाता कर्म बांध रहे हैं। इसलिए हमारी वज़ह से किसी व्यक्ति को तकलीफ नहीं होनी चाहिए।

एक इन्द्रिय जीव से दो इन्द्रिय जीव को कष्ट देने में ज्यादा असाता वेदनीय कर्म बंधता है अर्थात पेड़-पौधों को नुकसान पहुँचाने की जगह दो इन्द्रिय जीव को नुकसान पहुँचाया तो ज्यादा असाता कर्म बंधेगा। दो इन्द्रिय की तुलना में तीन इन्द्रिय और तीन इन्द्रिय की तुलना में चार इन्द्रिय मक्खी, मच्छरों को यदि हमारी वज़ह से दु:ख होता है तब असाता वेदनीय कर्म उत्तरोत्तर अधिक-अधिक बँधता है इस प्रकार पंचेन्द्रिय जीव को दु:खी किया तब असाता कर्म कितनी तीव्र मात्रा में बंधेगा इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं अर्थात् बहुत पाप का बंधन होता है और हमारे घर में जितने लोग हैं वे सैनी पंचेन्द्रिय हैं, इसलिए परिवार में एकता होनी चाहिए, आपस में संगठन, प्रेम होना चाहिए। आपस में कोई मन-मुटाव नहीं हो, किसी तरह का कोई सामने से सवाल जवाब नहीं हो, क्योंकि हर जीव भगवान हैं। वह थोड़े समय में तीन लोक का नाथ बनने वाला है। हो सकता है वह हमसे पहले भगवान बन जाये।

हम सोचते हैं यह क्या भगवान बनेगा, यह तो धर्म ही नहीं करता

है, हमारा झगड़ा ही इसी बात का है मैं रोज मंदिर जाता हूँ, प्रवचन सुनने जाता हूँ, परन्तु यह न मन्दिर जाता है और न ही प्रवचन सुनने जाता है। हमने होली खेलने वालों को देखा है, होली खेलने के बाद नहाने के उपरांत भी कोई व्यक्ति यह पहचान कर लेता है कि इसने होली खेली है। उस व्यक्ति ने 2 घंटे के लिए होली खेली और अगले दिन उसको देखकर पहचाना जा सकता है कि इसने होली खेली है।

अगर हम जिनवाणी की होली बरसों से खेल रहे हैं तब हमारे जीवन को देखकर आस-पास के लोगों को लगना चाहिए कि यह जिनवाणी को सुनता है। यह 10 दिन तक दशलक्षण पर्व की होली खेलकर आया है। हमारे जीवन, आचरण, व्यवहार में ऐसा दिखना चाहिए कि हम जिनवाणी के रंग में रंगे हैं। हमारी जीवन शैली बदल जानी चाहिए। देखने वालों को हमारे परिणामों को देखकर लगना चाहिए कि यह व्यक्ति धर्म करके आया है। इन्होंने असली दशलक्षण पर्व मनाये हैं यह मंदिर जाने का फल है। यदि कषाय कम नहीं हो रही हैं और अब भी यह सब ही चल रहा है तो लोग कहेंगे कि क्या यही सब सीखकर आये हो आदि-आदि।

शोक का वर्णन : दूसरा शब्द यहाँ शोक दिया है। शोक अर्थात् अपने किसी इष्ट का वियोग हो जाने पर होने वाला दु:ख । दु:ख और शोक में अंतर है। दु:ख किसी भी कारण से हो सकता है और शोक हमारे किसी अपने की मृत्यु का नाम है।

ताप का वर्णन : किसी व्यक्ति द्वारा हमारी निंदा करने पर हमें जो तकलीफ होती है, उसका नाम ताप है। किसी व्यक्ति ने जब हमारी निंदा की, तब हमें सिर दर्द हुआ या पेट दर्द हुआ? कुछ नहीं हुआ।

सिर दर्द होना दुःख कहलाता है, घुटनों में दर्द होना दुःख कहलाता है।

किसी का वियोग होने पर चित्त की अस्थिरता वह शोक है, और किसी के द्वारा अपशब्द कहने पर जो तकलीफ होती है उसका नाम ताप है अथवा दूसरे शब्दों में कहें तो अपवाद आदि के निमित्त से मन खिन्न होने पर जो तीव्र अनुशय संताप होता है, वह ताप है।

आक्रन्दन का वर्णन : आक्रन्दन अर्थात् रोना, हमारी वज़ह से किसी को ताप पहुँचा है। हमने किसी की निंदा-आलोचना की है तब हम असाता कर्म बांध रहे हैं। किसी की निंदा कभी-भी नहीं करना चाहिए। यदि हमारी वज़ह से किसी की आँखों में आँसू आ गये हैं तब असाता वेदनीय कर्म का हमने आस्रव किया है, यह आक्रन्दन है, हमारी वज़ह से किसी की आँखों में आँसू नहीं आने चाहिए। हमारी वज़ह से किसी के चेहरे पर मुस्कान आए यह कार्य हमारे द्वारा होना चाहिए, न कि हमारी वज़ह से किसी की आँखों में आँसू आ जाएँ।

वध व परिदेवन का वर्णन : वध अर्थात् किसी के प्राणों को हर लेना, प्राणों का वियोग करा देना। परिदेवन अर्थात् अत्यंत दुःखी होकर करूणापूर्वक रोना। करूणा से किसी को देख-देखकर बहुत रोना आता है। किसी की तकलीफ देखकर जो रोना आता है वह भी असाता वेदनीय कर्म के बंधन का कारण है। इस सूत्र में तीन शब्द और दिए हैं जो इसका हृदय है, ये तो कारण बता दिये कि किसी को दुःखी मत करो, किसी को परेशान मत करो, किसी को रुलाओ मत, इसमें क्या दम है यह तो दुनिया का हर आदमी कहता है इसमें जैन धर्म की क्या बात है। ये बात तो सारे धर्म सम्प्रदाय कहते हैं कि किसी को पीड़ा मत दो, किसी को तकलीफ मत दो।

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनं द्वयम्।
परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

यह व्यास जी के वचन हैं अठारह पुराणों का सार है। हिन्दू धर्म में अठारह पुराण कहे जाते हैं, शिव पुराण, मार्कण्डेय पुराण, भागवत् पुराण आदि अठारह पुराण हैं। वे भी सब विशाल रूप में हैं। उन सारे पुराणों का सार व्यास जी से पूछा तब महाकवि ने अठारह पुराणों का सार दो पंक्तियों में बता दिया। दो बातें ध्यान में रखो– परोपकार करोगे तो पुण्य बंधेगा और दूसरों को पीड़ा दोगे तो पाप बंधेगा। हिन्दू पुराणों का सार है कि किसी को पीड़ा मत दो, किसी को तकलीफ मत दो और हमारे शास्त्र भी यही बात कह रहे हैं; तब तो एक जैसी बात हो गई; लेकिन एक अंतर है।

यहाँ एक शब्द दिया गया है आत्म, आत्म शब्द यहाँ बड़ा शक्तिशाली शब्द है। मैं किसी व्यक्ति को दु:खी नहीं कर रहा, मैं आपको परेशान नहीं करता, मैं आपको कुछ नहीं कह रहा लेकिन मैं कमरा बंद करके खुद तो रो सकता हूँ? परन्तु यहाँ कह रहे हैं कि खुद रो रहा है इसका अर्थ है कि आगे के लिए कर्म का बंधन कर रहा है।

आत्म अर्थात् स्वयं और पर अर्थात् दूसरा। तीन शब्द है यहाँ आत्म–पर और उभय स्थानानि अर्थात् दूसरों को दु:खी करना और स्वयं दु:खी होना, दूसरे को शोक संतप्त करना, स्वयं शोक संतप्त होना आदि और उभय अर्थात् स्वयं और दूसरे को दु:खी करना यह भी बंधन का कारण है। सकारात्मक सोच की बात कर रहे हैं। ऐसी साइंस आपको कहीं नहीं मिलेगी।

दो हजार साल पहले ऐसी बात यहाँ लिख दी गई है जिसके लिए

आज देश–दुनिया में बड़े–बड़े सेमिनार होते हैं और पॉजिटिव थिंकिग की बात करते हैं। बड़े–बड़े सेमिनारों में यही सिखाया जाता है, यही बतलाते हैं। बड़े–बड़े स्पीकर/बोलने वाले आते हैं और ५ लाख रुपये लेते हैं। 2 घंटे समझायेंगे और निष्कर्ष में कह जायेंगे कि पॉजिटिव थिकिंग रखो, अच्छा सोचो, अच्छे भाव रखो।

यहाँ आचार्य कह रहे हैं कि दुःखी हो ही मत, आपको दुःखी होने का कोई अधिकार नहीं है। आप सोचते हो बहुत तेज सिर दर्द हो रहा है, मैं दुःखी भी नहीं होऊँ क्या? वह मुझे इतनी गालियाँ देकर गया है मैंने उसका क्या बिगाड़ा है मैंने उसे पलटकर जवाब भी नहीं दिया लेकिन मन में दुःख तो होता है तो यहाँ कह रहे हैं कि यह मन का जो दुःख है वह आगे और गालियों को निमंत्रण दे रहा है; क्योंकि यह जो दुःख है वह असाता वेदनीय कर्म का कारण है, हम स्वयं दुःखी हो रहे हैं, यह असाता वेदनीय का कारण है, अपने जीवन में कभी रोना मत चाहे कितनी भी प्रतिकूल परिस्थितियाँ क्यों न हो जायें।

दूसरे को रूलाने के काम को तो सारा जगत गलत बताता है, सारा ही जगत यह कहता है कि हमारी वज़ह से दूसरों की आंखो में आँसू नहीं आने चाहिए। यहाँ तो उमास्वामी आचार्य कह रहे हैं कि दूसरों की तो ठीक है लेकिन स्वयं की आँखों में भी आँसू नहीं आने चाहिए। रोने का क्या काम है? कोई कहता है कि मैं बहुत बड़ी विपत्ति में हूँ। मुझे मर जाने दो। कई लोग इतने परेशान हो जाते हैं कि आत्महत्या कर लेते हैं।

हमने शास्त्रों में पढ़ा है कि मनुष्यगति का जीव, तिर्यंच गति का जीव और देवगति का जीव ये मरना नहीं चाहते और नारकी जीव हर समय मरना चाहता है। यह शास्त्र का वचन है कि मनुष्य गति का जीव

मरना नहीं चाहता लेकिन अखबार में हर दिन ख़बर आती रहती है कि उसने आत्महत्या कर ली, वह मनुष्यगति का ही जीव तो था फिर उसने आत्महत्या क्यों कर ली?

टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है कि कषायों की पीड़ा सही नहीं जाती, अंदर में तीव्र वेदना होती है, अंदर में तड़फड़ाता है बहुत पीड़ित होता है कषायों की ये वेदना सही नहीं जाती है इसीलिए आत्महत्या करके सुखी होना चाहता है।

शास्त्रों के वचन सही हैं; मनुष्य आत्महत्या नहीं करना चाहता है। एक बार हम लोग कुएँ से पानी खींच रहे थे तभी एक व्यक्ति आया और कुएँ के ऊपर चढ़ गया हमने उसका हाथ पकड़ा कि क्या कर रहे हो? तब वह व्यक्ति बोला कि अपनी जिन्दगी से बहुत परेशान हूँ इसलिए मैं मरना चाहता हूँ। हमने जबरन उसका हाथ पकड़ा और पूछा कि पहले बात तो बताओ कि हुआ क्या है? उसने 5-8 मिनिट में अपनी सारी बात बताई कि क्या-क्या हुआ। तब मैंने उसका हाथ छोड़कर कहा कि ठीक है तुम तो बहुत दु:खी हो मर जाओ।

फिर क्या हुआ? अब वह मरना नहीं चाहता है, वह मनुष्य गति का जीव है वह मरना नहीं चाहता है लेकिन कभी-कभी कषाय इतनी प्रभावी हो जाती है कि अचानक आत्महत्या करने का कदम उठा लेता है। यदि उस व्यक्ति को 5 मिनिट के लिए रोक दिया जाये, उसके बाद वह मरना नहीं चाहेगा। अत: हम कभी दु:खी होंगे नहीं, इसीप्रकार कभी किसी को दु:खी करेंगे नहीं।

किसी को दु:खी नहीं करेंगे यह तो सारा जगत कहता है, लेकिन होंगे नहीं यह बात जैन शासन कहता है। असाता वेदनीय कर्म से बचने

के लिए हमें यह बात दोनों तरफ लगानी है। हम स्वयं भी प्रसन्न रहेंगे और दूसरों को भी प्रसन्न रखेंगे। प्रसन्न रहो और प्रसन्नता को आमंत्रण दो, दुःखी हो और दुःख को आमंत्रण दो। हम स्वयं देखें कि हम किस चीज़ को आमंत्रित कर रहे हैं। हम यदि मुस्कुराएंगे तो सामने वाला भी मुस्कुरा देगा, प्रयोग करके देखो कि यदि हम किसी अनजान-अपरिचित व्यक्ति के साथ चल रहे हों और यदि हमने उसे देखकर मुस्कुरा दिया तो सामने वाला भी हमें देखकर मुस्कुराएगा, यह चीज रिफ्लेक्ट होती है। हम यदि दुःखी होंगे तो हमें रिफ्लेक्शन में दुःख मिलेगा और यदि हम प्रसन्न होंगे तो हमें रिफ्लेक्शन में प्रसन्नता मिलेगी इसलिए हम यहाँ प्रसन्न रहने की कला सीख रहे हैं। इसे ही Art of Living कहते हैं। हम कैसे खुश रहें, हम ऐसा क्या सोचें, क्या चिंतन करें, क्या विचार करें, जिससे हमारा जीवन शांतिपूर्ण तरीके से चलता रहे, जिससे हमारे जीवन में किसी से झगड़ा नहीं हो, मनमुटाव नहीं हो। जीवन में खुशनुमा माहौल रहे, प्रसन्नता बनी रहे इसके लिए असाता वाले काम मत करो। तो फिर क्या करना है?

साता वेदनीय के आस्रव के कारण : अब यहाँ साता वेदनीय कर्म के आस्रव के कारण बतला रहें हैं। एक बार एक बालक जो ३ वर्ष का था अपनी माता के साथ रोड़ पर जा रहा था, उसने एक व्यक्ति को बाजार में हाथ में कटोरा लेकर भीख मांगते हुए देखा, उसके कपड़े फटे थे, शरीर रोगग्रस्त था, एक हाथ कटा हुआ था, आँखों से आँसू बह रहे थे, यह सब देखकर बच्चे ने अपनी मम्मी से पूछा कि इनकी हालत ऐसी क्यों है? ये रोते क्यों हैं? यदि आप उस बच्चे की माँ होती तो आप उस बच्चे को क्या जवाब देतीं? यही न कि असाता का उदय है, पापकर्म का उदय है आदि।

पर कर्म का उदय किसी के दु:ख का कारण नहीं हो सकता। वह भिखारी अपनी आत्मा को भूलकर दु:खी है। अपने स्वरूप को नहीं पहचानता है इसलिए दु:खी है। पापकर्म का उदय इस जीव को दु:खी नहीं करता है। नहीं समझने वाले लोग तो यही कहेंगे कि बेचारा गरीब है, भिखारी है, खाने-पीने को नहीं है इसलिए दु:खी है। जो थोड़ा समझते हैं, पढ़ते हैं वे यह जवाब देंगे कि बेचारे के पापकर्म का उदय है, क्या करें? यह पापकर्म की वज़ह से दु:खी है; लेकिन जो अध्यात्म की गहराई को समझते हैं वे कहेंगे कि परिस्थितियाँ इस जीव को दु:खी नहीं कर सकती हैं इन परिस्थितियों में भी यह जीव अपने स्वरूप को पहचानकर अतीन्द्रिय आनंद का रसास्वादन कर सकता है। अरे! आप फटे हुए कपड़ों में दु:ख की कल्पना कर रहे हो, लेकिन तन पर कपड़े नहीं हो तब भी मुनिराज अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद लेते हैं।

फटे हुए कपड़े कभी दु:ख नहीं देते है, यदि तन पर कपड़े नहीं हों तब भी आनंद के झरने झरते हैं। हमें अपने ध्यान में इस बात को बराबर याद रखना है कि संयोग कितने भी प्रतिकूल क्यों न हों, परिस्थितियाँ कितनी भी प्रतिकूल क्यों न हों; लेकिन मैं नया असाता कर्म किसी भी कीमत पर नहीं बाँधूँगा। अपने स्वभाव पर दृष्टि रहने से नया असाता कर्म नहीं बंधेगा।

इस सूत्र में जो आत्म की बात कही है कि स्वयं दु:खी नहीं होना, यह कैसे संभव है? तब बताया कि स्वरूप का आलम्बन लेने से संभव है। स्वयं को नहीं पहचानने के कारण दु:खी हो रहा है और जब दु:खी हो रहा है तो असाता बंध रहा है और जब द्रव्य स्वभाव को देखेंगे तो असाता कर्म नहीं बंधेगा और असाता कर्म नहीं बंधेगा तो दु:खी भी नहीं होगा। दु:खी नहीं होगा तो असाता नहीं बंधेगा। दु:खी होगा, तब असाता बंधेगा।

कोई भी परिस्थिति क्यों न आ जाये, हम कभी-भी दुःखी नहीं होते। हमको दुःखी करके दिखाओ। क्या करोगे? पण्डितजी आपका चश्मा छीन लेंगे, छीन लो कोई बात नहीं; मोबाइल ले जायेंगे, आईपैड ले जायेंगे, कपड़े छीन लेंगे, आपको मारेंगे-पीटेंगे, तो भी कोई बात नहीं। आपके हाथ-पैर तोड़ देंगे, तब भी कोई बात नहीं। इससमय ज्ञानी विचारता है कि जो स्वभाव का आलंबन लेता है, उसे तो किसी बात की परवाह ही नहीं है। वे तो अपने को मुनिसदृश देखते हैं; लेकिन जिसे कर्म के उदय पर भी श्रद्धान है, अपने कर्म के उदय पर भरोसा है वह व्यक्ति विचलित नहीं होता। वह सोचता है कि मेरा क्या बिगाड़ोगे। मेरा यदि पापकर्म का उदय होगा तब आप केवल निमित्त मात्र बनोगे, उदय तो मेरा खराब है।

यदि उदय मेरा खराब नहीं हुआ तब लाख प्रयत्न कर लेना तुम मेरा कुछ बिगाड़ने में समर्थ नहीं हो पाओगे। कौरवों ने पाण्डवों का कितना बिगाड़ने का प्रयास किया, उनको लाक्षागृह भेज दिया, देश निकाला दे दिया, जंगल में भेज दिया, आग लगा दी न जाने कितने प्रयास किये; लेकिन क्या हुआ?

धन्यकुमार की कथा आती है उनके जीवन की कहानी कैसी गजब है कि उन्हें उनके भाई तकलीफ देने का प्रयास कर रहे हैं, परेशान करने का प्रयास कर रहे हैं। सारे संयोग उन्होंने प्रतिकूल उपस्थित कर दिये, सारे संयोग प्रतिकूल आये लेकिन अंदर में उदय साता कर्म का चल रहा था तब वे सब प्रतिकूल संयोग भी अनुकूल हो गये। जब असाता कर्म का उदय आता है तब अनुकूल संयोग भी प्रतिकूल हो जाते हैं। अपने बॉडीगार्ड जिन्हें हमने अपनी सुरक्षा के लिए लगाया था वे ही हमें मारकर चले गये। इन्द्रिरा गांधी की रक्षा करने वालों ने ही उन्हें मार दिया था।

उनको रक्षा करने के लिये रखा था अर्थात् निमित्त साता के लिए बनाये थे; लेकिन जब अंदर में उदय बदलता है तो वही जो पूर्व में साता रूप परिणमित हो रहा था; अब असाता रूप परिणमन करने लगता है अर्थात् साता, असाता में बदल जाती है और रक्षक ही भक्षक बन जाते हैं।

जैनशासन में अन्याय को कोई स्थान नहीं है

यदि हम साता-असाता कर्म के उदय का गहराई से विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि हर चीज अलग-अलग कर्म के उदय से प्राप्त होती है। किसी वस्तु की संरचना अलग कर्म के उदय से है तो उसके गुण अलग कर्म के उदय से हैं। साता-असाता कर्म के उदय बिना कोई भी संयोग-वियोग नहीं मिलते हैं। संयोगों का मिलना वह हमारे साता व असाता कर्म पर निर्भर करता है। हम यदि अमेरिका में रहते हैं तो अमेरिका का वातावरण और उसमें भी कौनसी कॉलोनी, कौनसी स्ट्रीट में कौन से मकान में रहते हैं, हर चीज कर्मोदय से प्राप्त हुई है। यदि भारत में रहते हैं तो अलग कर्म का उदय, दूसरे देश में रहें, तो अलग कर्म का उदय। भारत में रहकर भी कौन से प्रान्त में रहें। हर प्रान्त में रहने की योग्यता वाला कर्म अलग-अलग है। हर प्रान्त, हर शहर में रहने की योग्यता वाला कर्म अलग है। उस शहर के कौनसे मोहल्ले में, कौनसी गली में, कौन से मकान में, कौन से कमरे में, उसमें कौन-सा पलंग और पलंग पर लगा हुआ जो चादर है और गद्दे की जो मोटाई है, वह कितनी है वह हमें आरामदायक लगेगी या तकलीफ देगी। यह हमारे कर्म के उदय पर निर्भर करता है। हमने इस तरह से विचार किया है क्या?

यदि हम इस तरह से सोचेंगे तो किसी पर भी दोषारोपण नहीं कर पायेंगे और किसी से भी अपेक्षा नहीं रहेगी। हमें यहाँ यह बात समझनी

है कि हमें जो भी मिलना है, हमें वह ही मिलता है। हमारी पुरानी पैकिंग में जो भी होगा, वहीं हमें मिलेगा। जैसी पैकिंग करके हम घर से लाए होंगे, बाहर किसी देश में जाकर अपना लगेज खोलेंगे तो जो पैक किया था, वही निकलेगा। वह पैकिंग भी हमारी स्वयं की ही है। कोई व्यक्ति ऑफिस टिफिन लेकर जाता है और वहाँ जाकर टिफिन खोलता है तब उसके टिफिन में कुछ और निकलता है और दूसरे के टिफिन में कुछ और निकलता है तब उसे देखकर ईर्ष्या करता है कि उसके टिफिन में यह और मेरे टिफिन में यह ऐसा क्यों? क्योंकि तुम्हारे टिफिन में जो पैक किया था; वो तुम्हारे पास खुलेगा, और उसके टिफिन में जो पैक किया था, वह उसके पास खुलेगा। कितनी व्यावहारिक बात है। यह जैन धर्म न्याय की बात करता है।

जगत में यदि कहीं न्याय है, तो इस कर्म व्यवस्था में है। इसके अलावा अन्य कहीं भी न्याय हो ही नहीं सकता है। ऑटोमैटिक व्यवस्था में जितना व्यवस्थित न्याय होगा वैसा जगत में और कहीं नहीं होगा। यह कैसी अलग और सुंदर व्यवस्था है। जब हम कर्म व्यवस्था के बारे में सोचते हैं, तब हमें इतना आनंद आता है कि हम निश्चिंत हो जाएँ, यह चीज खरीदें या वह चीज खरीदें? हम कितना भी दिमाग़ लगा लें, लेकिन सब कर्म में नक्की है; जो लेकर आये थे, हमारे पास वह ही आएगा। दुकान पर खड़े होकर जब साड़ियाँ खरीदेंगे तब 1 ही दुकान पर 2-4 घंटे लग जाएँ और 2-4 घंटे लगाकर भी यदि वेदनीय कर्म तत्संबंधी न हो, तो खाली हाथ निकलकर ही वापिस आ जायें अथवा लाएँ तो उसमें भी ये नहीं ये, ऐसी डिजाइन नहीं वैसी डिजाइन की, ऐसे कलर की, इतनी कीमत की, उस कपड़े की फिर भी जो अंत में आना होती है वह ऐसी आती है कि घर आने के बाद

लगता है कि यह गलत ही आ गयी वह दूसरी वाली साड़ी ज्यादा अच्छी थी। यह क्या हुआ? आपने इतना समय लगाया, इतनी मेहनत की, इतनी जाँच परख की फिर हुआ क्या आखिर में? घर आकर कहते हैं यह कलर तो मुझे बिल्कुल पसंद नहीं था। अरे! तुम्हारी पसंद नहीं चलेगी, पसंद तो द्रव्यकर्म की चलेगी।

हम सोचते हैं कि काम हमारी पसंद से हो जाए लेकिन हमारी पसंद से होता नहीं है। क्या शादी हमारी पसंद से होती है? कहते हैं शादी तो अपनी पसंद से ही होती है। दूसरे संयोग भले कर्म के उदय से मिले हों; लेकिन शादी के लिए लड़की तो मैं ही पसंद करूंगा; परन्तु द्रव्यकर्म जैसा कहेगा लड़की भी वैसी ही पसंद कर पाएगा। हम भोजन में क्या बनाने वाले थे और क्या बन गया। क्या खाने वाले थे और क्या खा लिया। हम कहाँ जाने वाले थे, किनके पास जाने वाले थे और कहाँ पहुँच गये, यह सारे संयोग पहले से ही निश्चित हैं। यह सारी व्यवस्थाएँ कौन कर रहा है?

ईश्वर कर्तृत्ववादी जो भी दर्शन हैं उनके यहाँ सारी व्यवस्था करने वाला एक ईश्वर ही है। वे कहते हैं कि सब कुछ भगवान करता है, हम क्या करें? भगवान फल देता है, भगवान की ही इच्छा से होता है। हमारी समस्या यह है कि हमारे यहाँ तो भगवान कुछ नहीं करते। अब भगवान नहीं करेंगे तो कौन करेगा? तो बोले कि कर्म करता है, कर्म किस चीज का कर्ता है? तो सुनो, वह कर्म अपने परमाणुओं में स्वयं के परिणमन का कर्ता तो हो सकता है; लेकिन मेरा कर्ता नहीं हो सकता है। मेरे सुख-दु:ख का कर्ता भी नहीं हो सकता है। हाँ! लेकिन जब निमित्त होता है, तब उसमें कर्ता-कर्मपने का भ्रम हो जाता है, यह भ्रांति बहुत बड़ी है।

घर गृहस्थी में रहने वाले सब लोग वीतरागी या भगवान तो हैं नहीं।

तब राग-द्वेष, कषाय, मायाचारी, छलकपट, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ये नौ नोकषाय या तेरह या पच्चीस आप जो भी कहो, अभी तो वे सभी मौजूद हैं। जब ये सारी कषाय मौजूद हैं तो अपना काम करेंगी और यदि ये सारी कषाय काम कर रही हैं तो जिनवाणी पढ़ने का लाभ क्या हुआ? कषाय तो ज्यों को त्यों ही हैं।

पर इसका लाभ यह हुआ कि कषाय उत्पन्न होने पर जैसे ही जिनवाणी की बात याद आती है, वह कषाय खिंचती नहीं है, वह कषाय लम्बायमान नहीं होती है; अपितु मन्द पड़ जाती है।

दु:खी करना या दु:खी होना, शोक संतप्त करना या स्वयं होना। अपनी वज़ह से किसी की आँखों में आँसू आना या स्वयं की आँखों में आँसू आना, ये सारी परिस्थितियाँ असाता वेदनीय के बंधन में कारण हैं। इसका आशय यह है कि यदि हम असाता से बचना चाहते हैं तो ऐसा कोई कार्य न करें। दूसरों के साथ मायाचारी, छल-कपट और बुरा करने का प्रयास भी नहीं करें। दूसरों के साथ बुरा करने के प्रयास में अपना ही बुरा होता है। हमें इसकी ख़बर ही नहीं है। **हम भाव किसी के लिए भी बिगाड़ें पर भव तो अपना ही बिगड़ना है।** हमने दूसरे के लिये भाव बिगाड़े तो उसका हमने क्या बिगाड़ लिया। पुराणों में अनगिनत उदाहरण भरे पड़े हैं कि किसी ने किसी का बुरा करना चाहा पर उसका बुरा नहीं कर पाए। हम चाहे सीताजी को याद करें, चाहे सेठ सुदर्शन को याद करें, चाहे कामदेव प्रद्युम्न को याद करें। बिना कर्मोदय के कोई किसी को सुखी-दु:खी नहीं कर सकता है।

असाता के उदाहरण : हम यदि महापुरूषों के जीवन को देखें तो हमें असाता का यह दु:ख, दु:ख नहीं लगेगा। उदय तो अपना ख़राब

है। गर्भावस्था में सीताजी को उनके ही पति रामचन्द्र जी ने जंगल में छुड़वा दिया। राम-सीता की जोड़ी की लोग तारीफ करते हैं। हमें गम्भीरता से यह विचार करना होगा कि हम राम-सीता की जोड़ी की उपमा क्यों दे रहें हैं? थोड़े समय भी वे सुख से साथ में नहीं रहे। शादी होते ही वनवास हो गया। ऐसी जोड़ी कौन बनना चाहता है। जब वापस आये तब पति ने जंगल में छुड़वा दिया। किसी के पति आज ऐसा तो नहीं करते हैं; परन्तु आज महिलाओं को अपने पति बुरे नज़र आते हैं। दूसरे की थाली में घी ज्यादा नज़र आता हैं। दूर के ढोल सुहावने; कहावत के समान सबको दूसरे अच्छे लगते हैं।

माँ अपने बच्चे से कहेगी, उस बच्चे को देख वह कितना पढ़ता है, उसको देख वह कितना समझदार है, उसको देख वह कितना काम करता है, उसको देख वह कितना अच्छा खाना बनाती है। इसका अर्थ यह है कि हमें दूसरे ही भले दिखते हैं। खुद को हम देखते ही नहीं है। खुद की अच्छाइयाँ हमें दिखाई ही नहीं देती हैं। हमें प्राप्त संयोगों में सहज रहना नहीं आता है।

सीताजी को तीर्थयात्रा का कहकर मायाचारपूर्वक, रामचन्द्रजी ने उन्हें जंगल में भिजवा दिया। उनके साथ तो छल हुआ था। सीताजी को यह नहीं कहा था कि मैं आपको जंगल भेज रहा हूँ। मैं आपको छोड़ रहा हूँ और फिर सीताजी की सरलता भी देखो। यह तत्त्वज्ञान जब व्यक्ति के अंदर में होता है, तब उसका जीवन सरल हो जाता है। हृदय की सरलता तत्त्वज्ञान पर निर्भर करती है। क्या आज हमें कोई इस तरह की सीता मिल पाएगी?

यदि आज के जमाने में इस तरह की घटना घटती तो क्या होता? कोर्ट कचहरी होती क्या? नहीं! कोर्ट कचहरी की भी नौबत नहीं आती,

पहले ही सवाल हो जाते कि जंगल में कैसे छोड़ रहे हो? मैं गाड़ी से उतरूँगी ही नहीं, कर लो क्या कर लोगे? वह कृतांतवक्र सेनापति, जिसने सीता को जंगल में छोड़ा, उतरने का निवेदन किया और सीताजी उस भयानक जंगल में सरलता से उतर गईं; लेकिन आज की महिलाएँ तो कहेंगी कि नहीं उतर रही क्या कर लोगे और यदि तुम मुझे छोड़कर जाओगे तो तुम भी तो रथ पर बैठोगे। पीछे से मैं भी बैठ जाऊँगी।

लेकिन नहीं, सीताजी में यह समझ थी कि किसको दोष दूँ, उदय तो मेरा ही खराब चल रहा है। जब वे ही मुझे अपनाने को तैयार नहीं हैं, वे ही मुझे जंगल में छुड़वाना चाहते हैं, जब उन्होंने ही मुझसे मुँह फेर लिया है। फिर किसकी बात करें और उनकी भी तो कोई गलती नहीं है, उदय तो मेरा ही खराब चल रहा है। मेरे असाता का उदय चल रहा है, मेरे पापकर्म का उदय चल रहा है।

पापकर्म के उदय में प्रतिकूल संयोग मिले बिना नहीं रहेंगे और पापकर्म का उदय, असाता वेदनीय कर्म का उदय मिट जाने पर एक समय के लिए भी हमारे पास प्रतिकूल संयोग टिका नहीं रहेगा। वह असाता कर्म अपना काम पूरा करेगा और चला जायेगा। उदय बदलने पर वह एक क्षण भी टिक नहीं सकता। कर्मों को भी तो बंधना पड़ रहा है। हम फंसे हैं तो वे भी तो फंसे हुए हैं। ऐसा नहीं है कि अकेले हम ही कर्म से बंधे हुए हैं; कर्म भी तो हमारे परिणामों की वज़ह से हमारे साथ में कोड़ा-कोड़ी सागर के लिए बंध गये। वे कार्मण वर्गणाएँ स्वतंत्र रूप से इधर-उधर घूमतीं; लेकिन हमारे पास आकर अटक गयीं, वे भी बंध गई।

इसप्रकार प्रथमानुयोग के उदाहरण (प्रसंग) चिंतन करने के लिए, साता और असाता की परिस्थितियों को देखने के लिए, हमें प्रेरित करते हैं।

स्वयं भी दुःखी नहीं होना और दूसरों को भी नहीं करना। हमने दूसरों के साथ बुरा किया नहीं कि तुरन्त अपने साथ बुरा हुआ। उधार का काम नहीं है। यह असाता वेदनीय की चर्चा थी, अब साता वेदनीय की चर्चा करेंगे।

साता के उदाहरण : यह असाता वेदनीय कर्म तो बहुत खतरनाक था, आगे से ऐसा कोई काम नहीं करना जिससे असाता वेदनीय कर्म का आस्रव हो; यदि कभी ऐसा हो जाये तो अपने परिणामों को तुरंत सम्भाल लेना। अन्यथा पहले तो बहुत पाप करेंगे फिर रोते-रोते फिरेंगे। कभी-कभी अपने द्वारा पूर्व में किये गये खोटे परिणामों को याद करके भी रोता है। उसको याद करके रोने पर भी असाता कर्म बंधेगा, यहाँ तो रोने का काम ही नहीं है। यह रोने का धर्म ही नहीं है। जिसने जैनधर्म को स्वीकार कर लिया, जो वीतरागी जिनधर्म की शरण में आ गया, उसको रोने का क्या काम? अनादि काल से अब तक रोते आये थे, अब नहीं रोयेंगे। जैसा कि पूजन की जयमाला की पंक्तियों में बाबू युगलजी कहते हैं-

प्रभो बीती विभावरी आज हुआ अरूणोदय शीतल छांव।
झूमते शांतिलता के कुंज, चलें प्रभु अब अपने उस गांव।।

प्रभो बीती विभावरी अर्थात् जो खोटी रात थी वह अब बीत गई और हुआ 'अरूणोदय' अर्थात् सूर्योदय हो गया है और शीतल छाया नज़र आ रही है। शांतिलता के कुंज झूम रहे हैं। वृक्ष लहरा रहे हैं। मंद सुगंधित हवा बह रही है। पुष्प खिल रहे हैं। अब मौसम बदल गया है। वह रात्रि चली गई, वह अंधेरा चला गया; क्योंकि तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति हो गई है।

अब हमें यह जिनवाणी मिल गयी है। मोक्ष-मार्ग प्रगट करने का

रास्ता मिल गया है। हमें बहुत सुंदर मार्ग मिल गया है। यह तो निधि है। जन्म-जन्मांतर के संचित पुण्य उदय में आते हैं, तब जिनवाणी सुनने का योग बनता है। सरलता से जिनवाणी सुनने का योग नहीं बनता है। हम किसी को वर्षों तक जिनवाणी सुनने की प्रेरणा दें परन्तु उसे भाव ही नहीं आता। हमारे यहाँ बहुत से जैन ऐसे होंगे कि कई दिनों तक उनसे कहते रहो, वर्षों तक कहते रहो, पर नहीं आना है तो नहीं आये। समझाने से समझेगा ही नहीं। कौन किसको समझाये और कौन किसके समझाने से समझे । वह अपने आप से ही समझेगा किसी के भी समझाने से नहीं समझेगा।

समझेगा अपने आप से, नहीं समझेगा किसी के बाप से

नहीं समझेगा, आप समझा-समझाकर थक जाओगे; लेकिन वह नहीं समझेगा।

यहाँ शांतिनाथ भगवान के जीवन का वह प्रसंग स्मरण करने योग्य है। शांतिनाथ पुराण में दस भव पहले की घटना है। दस भव बाद वे शांतिनाथ सोलहवें तीर्थंकर बनेंगे। अभी दस भव उनके बाकी हैं। स्वर्ग आदि में भी जायेंगे इसी के साथ सागरों तक अभी घूमेंगे। न जाने कितने सागर अभी बाकी है। और अभी तो उनको तीर्थंकर कर्म प्रकृति का बंधन भी नहीं हुआ है। जब कि भविष्य में उनका तीर्थंकर बनना निश्चित है।

वे दस भव पूर्व नगर सेठ थे, उनका राजसी ठाठ-बाठ था और इकलौता बेटा था। वह इकलौता बेटा घर में काम करने वाली नौकरानी पर मोहित हो गया। वह कहता है कि मैं इसी से शादी करूंगा। वे इतने बड़े नगर सेठ और एक नौकरानी से शादी, पिता ने रिश्ते से इंकार कर दिया। बहुत समझाया कि तेरे लिए इससे अच्छे-अच्छे कई सबंध आयेंगे; लेकिन लड़का नहीं माना। वह बोला शादी तो मैं इसी से

करूंगा, खूब समझाया; लेकिन वह नहीं समझा। पिता जी ने कहा- यह मेरी नाक का सवाल है। उस जमाने की बात है जब व्यक्ति की नाक बहुत मायने रखती थी। आजकल तो सब चलता है, लेकिन उस जमाने में नहीं चलता था; लेकिन वह नहीं समझा। आखिरकार माता-पिता ने आत्महत्या कर ली। शांतिनाथ भगवान का जीव १० भव पूर्व आत्महत्या कर लेता है और एक पत्र छोड़कर गये जिसमें लिखा था कि बेटा तुमको खूब समझाया; लेकिन तुम नहीं माने और यह शादी हम देख नहीं सकेंगे इसलिए हम आत्महत्या कर रहे हैं।

सुबह जब चिट्टी बेटे के हाथ में आयी तो बेटे के होश उड़ गये। हमें क्या लगता है कि वह खुश हुआ होगा कि रास्ते के काँटे हट गये। नहीं! उसने शादी ही नहीं की। अब उसको किसने समझाया? उसको समझाने वाला कोई नहीं था। उसने बाद में दीक्षा ले ली, वैराग्य हो गया, तपश्चरण किया और उसी भव से मोक्ष चला गया। वह बेटा भगवान बन गया और जो उसके माता-पिता समझाने वाले थे वे अभी संसार में घूमेंगे और जो नहीं समझ रहा था वह मोक्ष चला गया।

हम किस-किस को समझाने का विकल्प करते हैं। किसी को मत समझाओ। हमें पता नहीं है, किसकी होनहार कैसी है। किसका उपयोग कब पलट जायेगा, अपने आप समझ में आ जाएगी। जब उदय बदलेगा, तब सब समझ में आ जाएगा। उदय बदलता है, तब संयोग बदल जाते है। कहाँ से व्यक्ति कहाँ पहुंच जाता है और कहाँ से कहाँ चला जाता है। देव मरकर, एकेन्द्रिय हो जाता है और नारकी मरकर, तीर्थंकर हो सकता है। एकेन्द्रिय, द्विइन्द्रिय से निकलकर चक्रवर्ती का बेटा हो जाता है; कितना पुण्य बाँध लेता है। हम इसलिये भी यह बात कह रहें है; क्योंकि हम अभी असाता के उदय की परिस्थिति से तो घबरा रहे हैं और जब

साता की चर्चा चलेगी तब ऐसा लगेगा कि साता कर्म बांध लें।

हमें बंध की नहीं, मुक्ति की बात सोचनी है क्योंकि बंधन की सोचने वालों को, बंधन भी अच्छी जाति का नहीं होता। मुक्ति के बारे मे विचार करने वाले को, साता वेदनीय कर्म का बंधन भी उत्कृष्ट जाति का होता है। परिस्थितियाँ बदलते देर नहीं लगती है। तीन खण्ड के अधिपति नरक में चले जाते हैं। यहाँ मृत देह को छींटे देते रहे और वहाँ डंडे पड़ना शुरु हो जाते हैं। यहाँ सेठजी को चंदन की लकड़ी में जलाया जा रहा है और वहाँ वह जीव तो नरक की आग में झुलस रहा है। इन चंदन की लकड़ियों की थोड़ी बहुत ठंडक भी नीचे नहीं जाती है। अरे! कहाँ पहुंचेगी? कुछ नहीं पहुँचती है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय जीव मरकर निगोद में चला गया। यह मनुष्य कहता है कि मैंने कमाया, मैंने इतना इकट्ठा किया, जब हम यहाँ आये थे तब कुछ नहीं था और आज देखो हम कहाँ से कहाँ पहुँच गए हमने ऐसे ही धूप में बाल सफेद नहीं किये हैं। चालीस साल इतना कमाया है।

वास्तव में हमने चालीस साल मेहनत करके बर्बाद कर दिए क्योंकि आप ही बताइए कि आज हमारे घर में एक पोते का जन्म हुआ उसने कमाने के लिये क्या किया? हमने 40 साल में अरबों की सम्पत्ति कमायी और घर में एक पोते ने जन्म लिया और वह जन्म से ही अरबपति हो गया। उसने अरबपति होने के लिये कितनी मेहनत की है? कितनी दुकानें लगायी हैं? कितने पापड़ बेले हैं? उसने कितनी भाग-दौड़ की? कुछ भी नहीं किया। वह साथ में पैक करके एक टिफिन लाया था और यहाँ आया तो एकदम खुल गया। यदि अच्छा निकलता है, तब भी तेरा ही बांधा हुआ था और खराब निकलता है, तब भी तेरा ही बांधा हुआ था। पैकिंग तो हमने स्वयं ही की थी। दूसरों को दोष देने का काम नहीं है।

दूसरों की तरफ मत देखो और जब दूसरों की तरफ नहीं देखोगे, तब अपने आप दृष्टि स्वभाव की ओर जायेगी। जब बाहर का सारा काम-काज कर्म ने संभाल रखा है, तो हमें भेद-विज्ञान करने का अवसर मिल गया है। आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद को चखने का अवसर मिल गया है। इससे अच्छा मौका क्या मिलेगा?

निश्चिंत होने की अचूक औषधि

हमारे माथे पर बहुत सारा वज़न हो, कि यह करना है, वह करना है - जैसे बड़े-बड़े आयोजन हों, शादी-विवाह का कार्यक्रम हो और हमें काम करना है, जिम्मेदारी बहुत रहती है, तब हम क्या करते हैं? जिम्मेदारी को बांट लेते हैं। मेहमान आयेंगे उनको ठहराने की व्यवस्था के लिये एक व्यक्ति नियुक्त कर दिया। यातायात व्यवस्था किसी को दे दी। भोजन की व्यवस्था के लिये अलग व्यक्ति नियुक्त कर दिया। खरीददारी के लिए अलग व्यक्ति नियुक्त कर दिया। सारी व्यवस्थाएँ अलग-अलग व्यक्तियों को बांट देते हैं।

जब भोजन की व्यवस्था किसी व्यक्ति को दी है और किसी ने हमसे पूछा कि मिठाई कौनसी बन रही है तब हम कहेंगे कि संबंधित व्यक्ति से पूछें कि क्या बन रहा है और हम निश्चिंत हो गये; अब हमें उस संबंधी विकल्प नहीं है।

उसीप्रकार हम यहाँ कह रहे हैं कि हमारे पैसों सें संबंधित व्यवस्था, परिवार की व्यवस्था, हमारे स्वास्थ्य की व्यवस्था, हमारे जितने-जितने भी संयोग हैं - व्यापार, घर, दुकान आदि के जितने भी झमेले हैं, उन सबकी व्यवस्था की जिम्मेदारी का भार वेदनीय कर्म ने उठा रखा है। उसके पास कार्मण शरीर (कार्बन कॉपी) है, कार्बन कॉपी तैयार है, सबकुछ लिखा हुआ है। हम उसे बदल नहीं सकते हैं।

अब जब कॉपी तैयार हो गयी, उसके बाद हम कहें कि ऐसा नहीं वैसा, फिर हमारे अनुसार नहीं होगा। अनुबंध के अनुसार होगा। हमारे हस्ताक्षर हो गये। अब हमें बीच मे फेरबदल करने का हक नहीं है। अब सारा काम उस वेदनीय कर्म का है। जब ये सारी बातें हमारें मस्तिष्क में स्पष्ट हो गईं, हमें समझ में आ गईं तो अब दिमाग कहाँ लगाना है; क्योंकि अब हम सारी जिम्मेदारी से मुक्त हो गये।

आप सोच रहे थे कि आपके पास कितने काम हैं। मकान की व्यवस्था करानी है, इसके अंदर फर्नीचर बनवाना है, प्लम्बर को बुलाना है, मंदिर का काम करना है। खाते की व्यवस्था, भोजन की व्यवस्था कितना बड़ा झमेला है; लेकिन अब समझ में आ गया कि हमने काम करने वाला एक आदमी रखा हुआ है और वह पूरी जिम्मेदारी से काम करता है। जिसका नाम वेदनीय कर्म है। जब वह सारा काम कर ही रहा है, तब मैं बिल्कुल निर्भार हो गया।

जो काम वेदनीयकर्म कर रहा है उसमें से मुझे कुछ भी काम नहीं करना है और जो काम वेदनीय नहीं कर सकता है उस काम को करने में अपना उपयोग लगाना है। वह काम है अपने स्वभाव पर दृष्टि। स्वभाव पर दृष्टि अर्थात् सम्यक्दृष्टि, यह निर्भार होने का मार्ग है। सारा वज़न उतर गया। जब-जब वज़न माथे पर हो तब-तब शांति से एक कोने में जाकर उस वेदनीय कर्म को कहना भैया आप अपना काम सम्भालो अब मैं फ्री होता हूँ। यह रास्ता टेंशन फ्री होने का है।

आप रात्रि भोजन तो नहीं करते होंगे। रात्रि भोजन करते हों तो छोड़ देना, क्योंकि रात्रि भोजन में विकलत्रय जीवों के प्राणों का घात होता है। उनकी हिंसा का दोष लगता है। यह अच्छा काम नहीं है; क्योंकि साथ में उससे असाता आ रही है। हम यदि साता चाह रहे हैं

तो जो खोटा काम है उसे छोड़ देना चाहिए। ये दु:ख, शोक, ताप, आक्रन्दन जो असाता के कारण कहे थे। वे कर्म बांधने का कार्य कर रहे थे। हम कहते तो हैं कि असाता का उदय क्यों आ रहा है? मेरे साथ ऐसा क्यों हो रहा है? पर जब काम ही ऐसा कर रहे हो, पैकिंग ही ऐसी कर रहे हो तब पैकिंग खुलने पर हमें वही परिणाम तो प्राप्त होंगे।

एयरपोर्ट पर हमारा बैग खोला गया; क्योंकि हैंडबैग में हम चाकू, कैंची रखकर लाए थे। अगर हमें परेशान नहीं होना था, बैग नहीं खुलवाना था, तो ऐसी चीज वहाँ रखी ही क्यों? नहीं रखनी चाहिए थी। लोक मे कितनी सावधानी से पैंकिंग करते हैं। जो सामान साथ में ले जाया जा सके, वही सामान पैक करते हैं और जो सामान साथ में नहीं जा सके, उसकी पैकिंग नहीं करते हैं।

एक राजा था, उसका राजदरबार बहुत अच्छी तरह से, शान्ति पूर्वक चल रहा था; लेकिन एक दिन उसके दिमाग में एक बात आई कि सभी में मंत्री, महामंत्री, सेनापति आदि के पद हैं तो एक पद ऐसा भी होना चाहिए, जो मूर्खाधिराज का हो। राजा को यह बात जँच गई कि वह मूर्खाधिराज यहाँ बैठा रहेगा, ऊटपटांग बातें करता रहेगा और सबका मनोरंजन करता रहेगा। थोड़ा माहौल हँसी-मजाक का बना रहेगा। ऐसा विचार कर उसने पद की घोषणा कर दी और कहा कि पूरे राज्य में तलाशो और जो सबसे मंद बुद्धि हो उसे मूर्खाधिराज की उपाधि देकर गले मे पट्टा डालकर यहाँ राज दरबार में ससम्मान लाओ और यहाँ बिठाओ। आज्ञा का पालन हुआ और एक व्यक्ति को ले आये, जो बहुत मंद बुद्धि था। कुछ नहीं समझता था। उसको लाकर बैठा दिया, वह बैठे-बैठे अपनी बातें करता था, लोग हँसते थे और टाइम पास होता रहता था। शांति से सालों निकल गये और राजदरबार चलता रहा।

एक दिन राजा को ऐसी बीमारी हो गई कि वैद्यों ने जवाब दे दिया कि अब यह थोड़े ही समय के मेहमान हैं। राजा बिस्तर पर पड़े हुए थे। आसपास में सब लोग घेर कर खड़े थे। सब लोग अपनी सांत्वना दे रहे थे कि आप चिंता मत करना पीछे से सब सम्भल जायेगा। वह मूर्ख सबकी बातें पीछे खड़ा-खड़ा सुन रहा था। उसे लगा कि सभी कुछ न कुछ बातें कर रहे हैं तो मुझे भी कुछ न कुछ तो बात करनी चाहिए।

उसने महाराज से कहा कि लोग कह रहे हैं कि आप पीछे से चिंता मत करना तो कहीं जाने की तैयारी है क्या? राजा के सामने मौत खड़ी है और यह मूर्ख ऐसी बातें कर रहा है। जिंदगी भर हंसाया यह तो ठीक है, लेकिन अब इसको क्या जवाब दें। राजा ने कहा यह मंदबुद्धि नादान है; हाँ! जा रहा हूँ। उसने पूछा - आपके साथ जाने वाली सेना तैयार हो गई? राजा बोला-वहाँ सेना की जरूरत नहीं है। वह बोला-अच्छा घूमने जा रहे होंगे, राजा बोला नहीं घूमने नहीं जा रहे हैं और परिवार वाले भी नहीं जा रहे हैं। नौकर-चाकर भी नहीं जा रहे हैं। वह मूर्ख बोला अच्छा अकेले जा रहे हो? राजा बोला हाँ, वहाँ अकेले ही जाते हैं राजा जवाब देते-देते परेशान हो गया। मूर्ख बोला पैकिंग हो गई? राजा बोला कि वहाँ पैकिंग की जरूरत नहीं है। कुछ साथ में नहीं जाता है। मूर्ख बोला इसका मतलब आप पहले वहाँ जा चुके हो। सब व्यवस्था होगी। राजा बोला मैं कभी नहीं गया पहली बार ही जा रहा हूँ। मूर्ख बोला तब आपको कैसे पता है कि वहाँ क्या मिलेगा? राजा-मुझे कुछ नहीं पता वहाँ क्या मिलेगा, क्या नहीं मिलेगा; लेकिन यहाँ से कुछ साथ में नहीं जायेगा। मूर्ख बोला महाराज कितने दिन का आयोजन है? राजा बोला हमेशा के लिये जा रहा हूँ, कभी लौटकर नहीं आऊँगा।

मूर्ख बोला आपको पहले से पता था कि आप वहाँ कुछ भी नहीं ले जा सकते हो? राजा बोला हाँ, मालूम था। मूर्ख-कब से मालूम था? राजा बोला- मुझे बचपन से पता है कि कुछ भी साथ नहीं जाता है, इसे मौत कहते हैं। मरने के बाद कोई भी व्यक्ति कुछ भी साथ में नहीं ले जाता है? राजा बोला तू कुछ भी नहीं समझता है, मेरा दिमाग खा रहा है। व्यक्ति बोला माफ करना। मंद बुद्धि हूँ लेकिन आपने मुझे मूर्खाधिराज की उपाधि दी है, मुझे लगता है मैं मूर्खाधिराज हूँ, तो आप महामूर्खाधिराज हो। अपना पट्टा उतारा और राजा के गले में डाल दिया।

मूर्खाधिराज बोला महाराज जब आपको बचपन से पता था कि जब मैं हमेशा के लिये जाऊँगा तब कुछ भी मेरे साथ नहीं जायेगा तो जिन्दगी भर यह सारी चीजें क्यों इकट्ठी करते रहे?

राजा को तो पता था कि कुछ भी साथ में नहीं जायेगा। हम लोगों को पता है या नहीं। हमारी पैकिंग किस चीज की चल रही है? राजा ने तो कह दिया कि कुछ भी साथ नहीं जायेगा। हमने भी कह दिया कि कुछ साथ नहीं जायेगा; लेकिन हम यहाँ यह समझ रहे हैं कि हमने जितने शुभ-अशुभ कर्म किए हैं, जितने पुण्य-पाप के भाव किए है जितने भी परिणाम किए हैं, वे सब परिणाम हमारे साथ में जाने वाले हैं।

दुनिया में कोई मनुष्य ऐसा नहीं है जिसे इस बात का पता न हो कि मुझे एक दिन मरना है। एक दिन मुझे सब कुछ छोड़कर चले जाना है, हम सभी इकठ्ठा करने में लगे हैं। उसी दिशा में दौड़े जा रहे हैं।

कुछ होने योग्य कार्य (साता के आस्त्रव के कारण)

भूत-व्रत्यनुकम्पा-दान सरागसंयमादियोग: क्षान्ति: शौचमिति सद्वेद्यस्य।।12।।

सद् वेद्यस्य अर्थात् साता वेदनीय के आस्रव के क्या-क्या कारण है? तथा जो अनुकूलताओं का कारण है ऐसा पुण्य कैसे बंधता है? यहाँ प्रथम शब्द है - 'भूत', **भूत** अर्थात् जगत के प्राणी। संसार के प्राणियों को शास्त्रों में भूत कहा है। संसार में जितने भी जीव है वे भूत कहलाते हैं। चारों गतियों के प्राणियों में हम भी है, इसलिये हम भी भूत हैं।

दूसरा शब्द है **व्रती** अर्थात् अणुव्रती और महाव्रती। **अनुकंपा** अर्थात् भूतों के प्रति भी अनुकंपा और व्रतियों के प्रति भी अनुकंपा। जो त्यागी-व्रती लोग हैं, उनके प्रति करूणा का भाव। त्यागियों के प्रति सम्मान का भाव। साधर्मियों के प्रति वात्सल्य का भाव और यहाँ तो प्राणीमात्र के लिए करूणा की बात कर रहे हैं।

ऐसी करूणा की बात कर रहे हैं कि यदि हमें प्राणी मात्र में भगवान दिखायी देते हों; जीव मात्र में यदि परमात्मा दिखायी देते हों, तो विराधना का भाव नहीं आ सकता है। सच्चा आराधक वही होता है, जो अपने आप को परमात्मा समझता है। जिसे अपनी आत्मा की ख़बर होती है, उसकी ही आराधना सच्ची होती है। बाकी तो आराधना ही नहीं है। जिसे हम आराधना समझ रहे हैं वह आराधना नहीं है। आराधकों को तो भगवान के प्रति ऐसा भाव आता है-

'होउ मेरी ऐसी दशा जैसी तुम धारी है।'

हे जिनेन्द्रदेव! हे वीतरागी संतो! जैसी आपकी दशा है। हे व्रतियों! हे त्यागियों! हे संयमियों! आपको देखकर मेरा चित्त भी ललचाता है कि आप जैसी अवस्था मेरी भी हो जाए। वह दिन कब आयेगा कि जब

संत साधु बनके विचरूँ वह घड़ी कब आयेगी।

इस तरह की भावना भाने वाले जीव ने अपने भावों के द्वारा ही

पुण्य बांध लिया है। प्राणीमात्र के प्रति रक्षा का भाव रखना। किसी भी जीव की विराधना नहीं करना। यदि इन बातों का विस्तार करें तब पृथ्वीकाय-जलकाय-अग्निकाय आदि जीवों की विराधना नहीं करनी चाहिए - ऐसा भाव होना चाहिए।

घास के एक तिनके के ऊपर भी पाँव नहीं रखना। भगवान के नाम पर भी फूल नहीं तोड़ना। हम धर्म के नाम पर फूल तोड़ें और भगवान को चढ़ाएं। एकेन्द्रिय जीव की विराधना करें, त्रस जीवों की हिंसा करें, हमसे धर्म के नाम पर यह पाप नहीं हो सकता है।

अन्य क्षेत्रे कृतं पापं धर्म क्षेत्रे विनश्यति।

धर्म क्षेत्रे कृतं पापं व्रज लेपो भविष्यति।।

अर्थात् यदि अन्य क्षेत्र में पाप किया हो तो वह धर्म क्षेत्र में आकर नष्ट हो जाता है; परन्तु यदि धर्म क्षेत्र में आकर पाप किया तो वह वज्र के समान कठोर हो जाता है। यह तो अहिंसक जैन धर्म है, अनुकंपा का परिणाम है, दया का भाव है, करूणा का भाव है। इसे समझे बिना सम्यक्त्व नहीं होता।

पुण्य-पाप की समानता

उमास्वामी आचार्य इस करूणा को साता वेदनीय कर्म का आस्रव कह रहे हैं और साथ ही इसे अच्छा भी नहीं कह रहे हैं। इस प्रकरण में अच्छे-बुरे पर विचार नहीं किया गया है। जब हम साता-असाता को समझते हैं तब हमसे ऐसी भूल हो जाती है कि मानो उमास्वामी आचार्य यह कह रहे हों कि आसाता के काम तो मत करो और साता के काम करो; लेकिन वे ऐसा तो नहीं कह रहे हैं कि साता के काम करो। साता के काम भी करने लायक नहीं है। यहाँ कोई प्रश्न कर सकता है कि जब

तक वीतराग भाव न हो, तब तक तो यह साता वेदनीय करने लायक है? परन्तु आचार्य देव यहाँ यह प्रेरणा भी नहीं दे रहें हैं कि तुम पुण्य भाव करो। साता (पुण्य) को बांधो। लोहे की बेड़ियों से मत बंधो, सोने की बेड़ियों से बंधो; यह उपदेश भी आचार्य नहीं दे रहे हैं।

कोई कहे कि हम भी तो यही मान रहे हैं कि करने योग्यता वीतराग भाव ही है; लेकिन जब तक यह भाव नहीं हो तब तक हमें पुण्य तो करना ही चाहिए। तो कहा–नहीं! ज्ञानियों को भी जब तक वीतराग भाव में स्थिरता न हो तब तक पुण्य भाव आये बिना नहीं रहता है।

भाषा में फर्क है कि पुण्य भाव आए बिना नहीं रहता है और करना चाहिए। पुण्य भाव करना चाहिए, ऐसा कहने से इसमें उपादेय बुद्धि बन जाती है और आये बिना नहीं रहता है, यह तो मजबूरी है। हम क्या करें यह समस्या है। हमें पाप की तुलना में पुण्य करना पड़ रहा है; लेकिन मैं पुण्य चाहता हूँ इस धोखे में मत रहना। न पाप अच्छा है, न पुण्य ही अच्छा है; अच्छे तो दोनों ही नहीं है। समयसार में पूरा का पूरा पुण्य-पाप अधिकार तथा प्रवचनसार में अनेकों गाथाएँ इस प्रसंग में आचार्य देव ने लिखी हैं, जिसमें गाथा क्रमांक 77 में तो ऐसा लिखा है कि यदि कोई पुण्य और पाप में अंतर मानता है, तो वह अनंत संसार में रूलेगा।

ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाणं।
हिंडदि घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो ।।77।।

(हरिगीत)

पुण्य पाप में अंतर नहीं है जो न माने बात ये।
संसार सागर में भ्रमें मद-मोह से आछन्न वे।।

चत्ता पावरंभं समुट्ठिदो वा सुहम्मि चरियम्मि।

ण जहदि जदि मोहादी ण लहदि सो अप्पगं सुद्धं।।79।।

(हरिगीत)

सब छोड़ पापारंभ शुभचारित्र में उद्यत रहें।

पर नहीं छोड़े मोह तो शुद्धातमा को ना लहें।।

अर्थ – मोह को नहीं छोड़ता है–चत्ता पापारंभं सारा पापकर्म छोड़ दिया और शुभ क्रियाओं के अंदर उलझा हुआ है। 69वी गाथा की टीका में अमृतचन्द्राचार्य देव ने उसे धूर्त अभिसारिका कह दिया है।

हमें पुण्य–पाप में भेद दिखता है। यह अनंत संसार का कारण है। पूर्व में जब असाता के कारण बतलाए थे। तब तक तो चेहरा मुरझा रहा था कि – मुझसे यह गलती हो गई या वह गलती हो गई और जैसे ही साता के कारण बताने प्रारम्भ किए वैसे ही चेहरा खिल गया कि उसे ध्यान से सुनना है; क्योंकि अपने को तो यह करना है। साता के कारण को ध्यान से सुनूंगा तभी तो वे सब कार्य करूंगा क्योंकि यह सब मुझे चाहिए हैं। आप कहाँ उलझ रहे हो, कहाँ फंस रहे हो। पुण्य–पाप दोनों की समानता का विचार करो। न पाप अच्छा है, न ही पुण्य अच्छा है।

फिर कहते हैं कि पाप से तो पुण्य अच्छा है न? मजबूरी है यह बात समझो तो ठीक है। कोई व्यक्ति शादी से लौटकर आ रहा था, अटैची साथ में थी, वह ट्रेन में से चोरी हो गई। उसका दिमाग खराब हो गया। आसपास के लोगों ने समझाया कि यह तो आपके साथ अच्छा हुआ कि घर लौटते समय अटैची चोरी हुई। शादी निपटने के बाद कपड़े चोरी हुए यदि शादी में जाने से पहले चोरी हो जाते तो क्या होता? वहाँ शादी में क्या कपड़े पहनते? यह तो बहुत अच्छा हुआ कि

जाते समय नहीं, बल्कि वापस लौटते समय चोरी हुई है। सबके समझाने पर उसे यह बात समझ में आई कि उसके साथ यह तो अच्छा हुआ। घर आकर उसने आस-पड़ोस मे मिठाई बांटी। लोगों ने पूछा मिठाई किस बात की है? तब व्यक्ति बोला- बहुत अच्छा हुआ कि जाते समय नहीं, बल्कि आते समय अटैची चोरी हुई अब आप बतायें कि क्या अच्छा है? जाते समय चोरी होना वह अच्छा है या आते समय चोरी होना वह अच्छा है। तो कहा दोनों ही अच्छे नहीं है। क्योंकि चोरी होना हमेशा ही नुकसानदायक है।

उसी प्रकार चाहे साता हो या असाता यह बंधन कराने वाला है। दोनों ही संसार में भ्रमण कराने वाले हैं इनसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है। यहाँ साता के कारण बताये जा रहे हैं। साता के कौन से कारण हैं, जिनसे अनुकूलताएँ मिलती है-भूतवृत्यनुकंपा। ज्ञानी करूणा करना नहीं चाहता वरन् उसे सहज करूणा का भाव आये बिना रहता नहीं है। ज्ञानी जीव करूणा में उलझना नहीं चाहता है।

प्रवचनसार में इस करूणा भाव को मोह का चिह्न बताया हैं।

अट्ठे अजधागहणं करुणाभावो य तिरियमणुएसु।
विसएसु य प्पसंगो मोहस्सेदाणि लिंगाणि।।८५।।

(हरिगीत)

अयथार्थ जाने तत्त्व को अति रती विषयों के प्रति।
और करुणाभाव ये सब मोह के ही चिह्न हैं।।

यह करूणा भाव अच्छा नहीं है। इस करूणा भाव को अच्छा नहीं कहते हैं। इससे साता जरूर बंध जायेगी, लेकिन यह साता अनित्य है। साता और असाता दोनों जुड़वा बहनें हैं।

एक कोई ज्ञानी महात्मा थे। वे राजा से मिलने के लिए महल के दरवाजे तक आए पर पहरेदार ने रोक लिया। पहरेदार से महात्मा बोले मुझे राजा से मिलना है। पहरेदार बोला आप कौन हैं? ऐसे ही हर कोई राजा से नहीं मिल सकता। महात्मा बोले –आप राजा को संदेश दे दो कि आपके साढू भाई आये हैं। पहरेदार बोला क्या बकवास करते हो आप। हमारी रानी साहिबा तो अकेली हैं, इकलौती बेटी हैं। राजा का तो कोई साढू भाई नहीं है। महात्मा बोले–आप राजा को संदेश भिजवाओ। आखिरकार पहरेदार राजा के पास गया और संदेश दे दिया। राजा ने महात्मा को बुलाया और ससम्मान बिठाया आपस में चर्चा की। पहरेदार ने राजा से पूछा कि रानी साहिबा की तो कोई बहन नहीं है फिर आपका इनसे क्या रिश्ता है? राजा बोला– तुम्हें पता नहीं है वेदनीय कर्म की दो बेटियाँ है एक साता और एक असाता। साता के साथ हमारा विवाह हुआ है और असाता के साथ इन महात्मा का विवाह हुआ है।

देखो ज्ञानियों की दृष्टि, ज्ञानी असाता के उदय वालों को भी हीन दृष्टि से नहीं देखते और साता का उदय आ जाने पर भी अपने घमंड में चूर नहीं होते। उदय के बारे में यदि सहजता से विचार करें तो जीवन में सहजता आये बिना नहीं रहती। ज्ञानियों के जीवन में करूणा भाव भी आता है। भूतों (प्राणियों) के प्रति करूणा, दया, अनुकंपा का भाव साता वेदनीय के आस्रव का कारण है।

आगे दान की चर्चा की है। **दान** देने का परिणाम **सराग संयमादि** का भाव साता वेदनीय के आस्रव का कारण है। निश्चय संयम तो मुक्ति का कारण है और निश्चय संयम के साथ में वर्तने वाला रागांश वह पुण्य बंध का कारण है। यह साता वेदनीय कर्म के बंधने का कारण हो गया। सरागसंयमादि के पश्चात् योग की चर्चा है। मन–वचन–काय की शुभ

प्रवृत्तियों का नाम योग है। हम अच्छा सोचते हैं, अच्छा बोलते हैं, अच्छा देखते हैं, ये सब अच्छी प्रवृतियाँ देह की होती हैं। **शांति** अर्थात् क्रोध आदि कषायों से निवृत्ति। कषायों की मंदता, कषाय आदि नहीं होना, क्रोध आदि नहीं होना और **'शौचं इति'** अर्थात् निर्लोभी वृति, लोभ का भाव नहीं होना। ज्यादा हाय-हाय नहीं है। शांति है, शांत परिणाम हैं ये सारे परिणाम साता वेदनीय कर्म के आस्रव के कारण हैं।**शौचं** इति सद्वेद्यस्य यह सब साता वेदनीय कर्म के आस्रव के कारण हैं।

आपको यदि अनुकूलताएँ चाहिए तो साता रूप प्रवर्तन करना और यदि आपको लगता है कि हमें प्रतिकूलताएँ भी मिलें तो भी कोई ऐतराज नहीं है; तो फिर असाता के कारणों में प्रवर्तन करना और यदि आपको ऐसा लगता हो कि ये दोनों तो बंधन के ही कारण हैं, हमें तो संसार में रहना ही नहीं है। हमें संसार का भ्रमण खत्म करना है, तो अपने स्वभाव का आश्रय करना। अपने स्वभाव का आश्रय करने पर न साता है, न असाता है। फिर तो अपने में ही सदाकाल से सदाकाल का नाता है।

'न साता है न असाता है बस अपने से ही अपना नाता है'

हम आज तक स्वयं को भूले हुये हैं

दर्शनमोह का स्वरूप : दर्शनमोहनीय कर्म इसे शास्त्रों में मिथ्यात्व अथवा मोहनीय के नाम से भी पुकारा जाता है,यह मिथ्यात्व पाप नहीं, महापाप है। पाप का बाप नहीं, पाप का दादा है। इसके दम पर सारे पाप होते हैं। मिथ्यात्व जीवन में हो तो व्यक्ति पाप से मुक्त नहीं हो सकता है और मिथ्यात्व चला जाये तो संसार टिक नहीं सकता है। जिसके कारण हम अनादि काल से आज तक संसार में घूमते आ रहे हैं, वह मिथ्यात्व ही है। हम ऐसा कहें कि यह हमारा ऐसा मित्र है जिसकी वज़ह से हम

संसार में सब जगह घूमे हैं। यह ऐसा मित्र है, जिसने स्वर्ग और नरक में भी हमारा साथ नहीं छोड़ा लेकिन इस बात को इस रूप में कहना ज्यादा उचित है कि निगोद से लेकर स्वर्ग नरक, तिर्यंच आदि गतियों में, भोग-भूमि आदि में सभी स्थानों पर इसके साथ की वज़ह से हम दर-दर की ठोकरे खाते रहे हैं। इस मिथ्यात्व का साथ कैसे छूटे यह काम हमें करना है। मिथ्यात्व अर्थात् दर्शनमोहकर्म। वह कर्म बँधता कैसे हैं इस कर्म का आस्रव कैसे होता है? इस बात को हमें समझना है।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करनी है, सिद्ध दशा की प्राप्ति करनी है, मोक्ष में जाना है, उसके लिए मोक्षमार्ग को प्रगट करना है। मोक्ष का मार्ग अर्थात् सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन प्रगट करना होगा और सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिए मिथ्यात्व का अभाव करना होगा। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए मिथ्यात्व का अभाव करना आवश्यक है और मिथ्यात्व के अभाव के लिये हमें यह जानना होगा कि यह मिथ्यात्व क्यों होता है? दर्शन मोहनीय कर्म क्यों बंधता है? इस दर्शन मोहनीय कर्म के आस्रव और बंध के कारण हमें पता लग गये और उनसे बचने का उपाय/प्रयास कर लिया गया तो निश्चित रूप से मिथ्यात्व से भी बच जायेंगे।

मिथ्यात्व से सब छूटना चाहते हैं; लेकिन मिथ्यात्व के कारणों से कैसे छूटें इस पर किसी की दृष्टि नहीं है। जितने आत्मार्थी, स्वाध्यायी है, सब एक स्वर से कहेंगे कि हमें मिथ्यात्व को छोड़ना है। मिथ्यात्व छूटना चाहिए तभी सम्यग्दर्शन होगा; लेकिन मिथ्यात्व को छोड़ने की पहली सीढ़ी है कि मिथ्यात्व का कारण पता होना चाहिए। दर्शनमोहनीय कर्म बंधने का कारण क्या है उस कारण से बचना होगा तभी दर्शनमोहनीय कर्म से छुटकारा पा सकते हैं। दर्शनमोहनीय कर्म के लिये कोई चौकीदार खड़ा नहीं करना है कि यदि यह कर्म आये तो इसे आने

मत देना। उसके लिये उमास्वामी आचार्य की शरण में जाना होगा। उमास्वामी आचार्य ने दर्शन मोहनीय कर्म के संबंध में कुछ उपाय बतायें हैं, जिससे हम इस कर्म से छुटकारा पा सकते हैं।

अवर्णवाद

दर्शनमोह का आस्त्रव किसके कारण से?

केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादौदर्शनमोहस्य।।13।।

केवली श्रुत, संघ, धर्म और देव का अवर्णवाद (असादना) यह दर्शनमोह कर्म के आस्त्रव के कारण हैं। इन सब के अवर्णवाद केकारण महापाप हो रहा है जिसकी हमें खबर तक नहीं है। पाप से तो सारी दुनिया बच रही है, लेकिन महापाप की कोई खबर नहीं है। छोटे-छोटे पाप में सावधानी रखते है लेकिन बड़े-बड़े पापों की खबर नहीं है।

टोडरमलजी मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ में छठे अध्याय के अंत में पृष्ठ 192 पर लिखतें हैं - जिनधर्म में तो यह आम्नाय है कि पहले बड़ा पाप छुड़ाकर फिर छोटा पाप छुड़ाया है, इसलिए इस मिथ्यात्व हो सप्त व्यसनादिक से भी बडा पाप जानकार पहले छुड़ाया है।

हम अपने हृदय पर हाथ रखकर सोचें कि यह सप्त व्यसन क्या है? नाम लेने में भी हमें शर्म आती है, ऐसे ये सप्त व्यसन हैं। किसी के जीवन में दिखायी दे जावें तो हमें घृणा हो जावे। ऐसे निकृष्ट कार्यों का नाम है सप्त व्यसन। टोडरमलजी कह रहे हैं कि सप्त व्यसन किसी के जीवन में दिख रहे हों तो कोई महत्व की बात नहीं है, इतना बड़ा पाप नहीं है लेकिन कोई व्यक्ति केवली का अवर्णवाद करता है तो यह बड़ा पाप है, महापाप है। गृहीत मिथ्यात्व का कारण है, जिसकी हमें ख़बर नहीं है। हम कहाँ उलझ रहे हैं? हम हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील परिग्रह

आदि छोटे-मोटे पापों में उलझे हैं।

शास्त्रों में उल्लेख है कि पाँच पापों का फल नरक है और मिथ्यात्व का फल निगोद है। कोई व्यक्ति पाप करे, हिंसा करे, झूठ बोले, चोरी करे, कुशील सेवन करे, परिग्रह संचय करे आदि रूप इन पाँच पापों में लिप्त हो तो कोई बड़ा पाप नहीं होता है, कोई अनर्थ नहीं होता; लेकिन इस अनर्थ की, महापाप (मिथ्यात्व) की खबर ही नहीं है। बड़ा पाप कौन-सा? जो पाप जैसा नहीं लगे। बड़ा अपराधी कौनसा? जो अपराधी जैसा नहीं लगे। बड़ा शातिर चोर वह जो सफाई के साथ चोरी करे और पता भी न चले यह मिथ्यात्व ऐसा पाप है जो पाप जैसा लगता नहीं है। धर्म का वेष बनाकर आता है। शुभभाव को यह मिथ्यात्व आज तक धर्म मानता रहा है।

कहाँ-कहाँ पर बड़ा पाप हो रहा है कि जहाँ धर्म नहीं है वहाँ धर्म मान लेना यह बड़ा पाप है। बहुत से अवर्णवाद की बात यहाँ पर की गई है। किन-किन का अवर्णवाद हमसे होता है- पहला है केवली, केवली अर्थात् अरहंत भगवान और सिद्ध भगवान ये दोनों केवली हैं। फिर कहा श्रुत, श्रुत अर्थात् जिनवाणी, शास्त्र। फिर कहा संघ, संघ अर्थात् मुनि-आर्यिका, श्रावक-श्राविका। ऋषि, मुनि, यति, अनगार इनको भी संघ से संबोधित किया गया है। फिर कहा धर्म और फिर देव। केवली, श्रुत, संघ, धर्म और देव इन पांचों में से किसी का भी अवर्णवाद, अपमान, विराधना हुई तो यह महापाप हमारे द्वारा हो गया। अवर्णवाद अर्थात् असादना। अनेकों दृष्टि से इस असादना की बातें हो सकती है। स्थूल स्तर पर बाते करें तो अलग बातें होगी और सूक्ष्म स्तर पर बातें करें तो अलग बातें होगी।

अवर्णवाद का फल

ये बंधन 70 कोड़ा-कोड़ी सागर का है, इसका फल निगोद में जाना कहा है। 1 श्वांस में 18 बार जन्म-मरण करेगा। अनंत काल निगोद में जाकर बितायेगा। तिर्यंच गति की उस स्थिति की हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं कि वहाँ कैसे दुःख हैं। नरक के दुःख तो समझ में आते हैं; लेकिन तिर्यंच गति के दुःख और उसमें भी निगोद के दुःख हमें समझ में नहीं आते हैं।

शास्त्रों में उल्लेख है कि सिद्धों के सुखों का वर्णन नहीं किया जा सकता और निगोद के दुःखों का वर्णन नहीं किया जा सकता। करोड़ों जिह्वाएँ भी उनके दुःखों का वर्णन करने में समर्थ नहीं है। यदि हम इन दुःखों से बचना चाहते हैं तो हमें दर्शनमोहनीय कर्म से बचना होगा और इससे बचने के लिए अवर्णवाद से बचना होगा।

क्या ज्ञानियों को भी कषाय होती हैं?

गतियाँ चार हैं मनुष्य, तिर्यंच, नरक और देव। चारित्र मोहनीय के कारण संसार में जीव इन चार गतियों में पाये जाते हैं। निगोदिया जीव न मनुष्य गति में है न नरक गति में है और न ही देव गति में है। निगोदिया जीव मात्र तिर्यंच गति में है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय व जितने भी पशु-पक्षी दिखायी देते हैं सब तिर्यंच गति में समाहित हैं और निगोदिया जीव भी तिर्यंच गति में आते हैं और वे निगोदिया जीव नियम से एकेन्द्रिय होते हैं।

मोहनीय कर्म का दूसरा भेद चारित्र मोहनीय है। **कषायोदयात्तीव-परिणामश्चारित्रमोहस्य।।14।।** चारित्र मोहनीय कर्म से कषाय होती है, गुस्सा, अभिमान, मायाचार, लोभ, हँसना, रति, शोक, भय, घबराहट,

जुगुप्सा, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पुरूषवेद रूप जितने भी परिणाम होते हैं, ये सभी परिणाम चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से होते हैं। विचित्र तरह के परिणाम दिखायी देते हैं। जिसका जैसा चारित्र मोहनीय कर्म का उदय होता है उसके वैसे परिणाम होते दिखायी देते हैं।

कषायों के उदय में साम्यभाव कैसे रखें?

जैसे एक घटना को देखकर चार व्यक्तियों के अलग-अलग परिणाम हुए, ये अलग-अलग विचार क्यों हुए जबकि घटना तो उन्होंने एक जैसी देखी। जिसके अंदर जैसे चारित्र मोहनीय कर्म का उदय होगा बाहर में उस तरह के परिणाम होते हुए दिखायी देंगे ऐसा निमित-नैमित्तिक संबंध है।

ग्रन्थों में वेश्या का एक उदाहरण आता है कि वेश्या की मृत देह पड़ी हुई है। उसे देखकर चार लोगोंको चार तरह के परिणाम होते हैं। एक को भोग का परिणाम आता है कि जिंदा होती तो मैं इसका भोग करता। उसी मृत देह को देखकर चोर को परिणाम होता है कि यहाँ लोग नहीं होते तो मैं इस वेश्या के जेवर चोरी करके ले जाता। एक संयासी व्यक्ति जब उसे देखता हैं तो उसे वैराग्य का भाव आता है कि देखो संसार की अवस्था कहाँ भोगों में इसने अपना जीवन व्यतीत कर दियाऔर इसके ऐसे ही प्राण निकल गये; धन के पीछे दौड़ती रही और कुछ भी साथ नहीं ले जा सकी। वहाँ से गुजरता एक कुत्ता उसे देखकर सोचता है कि लोग यहाँ से हटे तो मैं इसे नोंचकर इसका माँस खाऊँ। इसीप्रकार सबको अलग-अलग परिणाम होते हैं। किसको किस तरह के परिणाम होंगे इसका आधार क्या है तो कहा कि अंदर में जैसा कर्म का उदय होगा उस तरह का परिणाम आएगा। इस संदर्भ में बहुत उदाहरण हो सकते हैं।

मान लीजिए कि कोई एक छोटा बालक मम्मी की अंगुली पकड़कर जा रहा है। केले के छिलके पर उसका पैर पड़ा और वह गिर गया। जब वह बच्चा फिसल कर गिरा तो रोने लगा। बच्चे को रोता देखकर उसकी माँ तो घबरा गयी कि इसको एकदम क्या हो गया। तभी उसके पिता ने उस बच्चे को एक थप्पड़ मारा कि नालायक देखकर नहीं चल सकता। वहीं दो–चार लड़के बाइक पर बैठे थे यह घटना देखकर वे हंसने लगे, एक को हास्य का परिणाम आ रहा है और एक को भय का परिणाम आ रहा है। एक को क्रोध का परिणाम आ रहा है जबकि घटना एक जैसी है लेकिन सबके परिणाम अलग–अलग हैं। ऐसा क्यों? क्योंकि चारित्र मोहनीय कर्म का उदय भिन्न–भिन्न है।

यह चारित्र मोहनीय कर्म बंधता कैसे है? इस चारित्र मोहनीय कर्म को समझने से क्या लाभ है? इसको समझने का लाभ यह है कि दूसरे जीव के क्रोधादिक परिणाम को देखकर उनसे घृणा नहीं करना, उन पर करूणा भाव रखना; क्योंकि वह क्या करे उसके ऐसे कर्म का उदय है।

स्वयं के क्रोधादि कषाय हो रही हैं कषाय के उदय में ऐसे तीव्र परिणाम होने से चारित्र मोहनीय कर्म का आस्रव होता है और जब चारित्र मोहनीय कर्म बंधता है तब इस तरह की परिस्थितियाँ होती हैं। एकदम गुस्सा आ जाता है और फिर हम सोचते हैं कि मुझे गुस्सा नहीं आना चाहिए था, अब क्या करें तो कहा कि अब नियंत्रित करो।

नियमसार में आचार्य कुंदकुंद स्वामी कहते हैं – '**णाणा जीवा णाणा कम्मा**' बहुत प्रसिद्ध गाथा है। जितने जीव है उन सब जीवों के परिणाम अलग–अलग है सबका उदय अलग–अलग है। सबका बंधन अलग–अलग प्रकार का है। सबकी परिस्थितियाँ अलग–अलग प्रकार की है। दो व्यक्ति आपस में बातचीत करते हैं कि आप भी चाय नहीं पीते और

मैं भी नहीं पीता। अपने विचार आपस में कितने मिलते हैं लेकिनये समझता नहीं है कि दो लोगों के विचार आपस में कभी मिल नहीं सकते। यह बात यदि समझ में आ जाये तो सारे झगड़े खत्म हो जायें।

दो व्यक्तियों के परिणाम एक जैसे हो ही नहीं सकते क्योंकि चारित्र मोहनीय कर्म सबका अलग-अलग है, सबका उदय अलग-अलग है सबकी परिस्थितियाँ अलग हैं सब अलग-अलग गतियों से आये हैं। सबको अलग-अलग गतियों में जाना है। कौन कहाँ से आया है। किसको कहाँ जाना है। सबका उदय अपना-अपना व्यक्तिगत है जो अंदर में है और आप कहते हो कि समान है। एक समान कुछ भी होता ही नहीं है। यहाँ समानता का काम ही नहीं है। इसलिये सावधान रहो। अपने बिगड़ते हुए परिणामों को सम्भालो तथा दूसरों के बिगड़ते हुए परिणामों को देखकर चारित्रमोहनीय कर्म के उदय का विचार करो। अन्य व्यक्ति के बुरे से बुरे परिणाम देखकर उससे घृणा मत करो और अपने अच्छे से अच्छे परिणाम देखकर अभिमान मत करो। यदि अन्य व्यक्ति के बुरे परिणाम हमें दिख रहे हैं तब उससे द्वेष/घृणा मत करना; अपितु ऐसा विचार करना कि इसके चारित्र मोहनीय कर्म का उदय है इसलिए अभी क्रोध आ रहा है लेकिन पाँच मिनिट बाद इसी घटना पर इसके परिणाम बदल जाएँगे।

छोटा-सा बच्चा कभी आप पर लपकता है तो आप खुश होते हैं और कभी गुस्सा हो जाते हैं इसका क्या कारण है अलग-अलग समय की बात है किस समय कैसे परिणाम हो जायें, इसप्रकार हमने अतीतकाल में सभी परिणाम किये हैं। किसी व्यक्ति को देखकर हमें लगता है कि ये कितना पापी है मुझे तो इससे बात करना भी पसंद नहीं है। क्यों भाई समताभाव क्यों नहीं रखते हो अतीत में हमने इससे भी खोटे परिणाम

किए हैं इसलिए चारित्रमोह के उदय का विचार करो क्योंकि इसकी ऐसी स्थिति चारित्रमोहनीय कर्म के उदय के कारण बनी है।

अभी गुस्सा आ रहा है, थोड़ी देर में रागभाव आ जायेगा, कभी शोक हो जाता है, कभी भय हो जाता है। समय-समय की बात है। परिणामों की क्षणिकता भी दिखायी देती है और जब उदय का विचार किया जाता है तो यह व्यक्ति सावधान रहता है कि हम इस चारित्र मोहनीय के जाल में नहीं फंसे। कभी-कभी हमें लगता है कि मुझे गुस्सा बहुत आता है, मैं क्रोध पर बहुत नियंत्रण करने की कोशिश करता हूँ लेकिन फिर भी गुस्सा आ जाता है। यह सब चारित्र मोहनीय कर्म का उदय है। हास्य का उदय आयेगा तो हंसेगा। आपको हंसी क्यों आयी क्योंकि आपके हास्य कर्म का उदय था और एक को नींद आयी तो उसके दर्शनावरणीय कर्म के निद्रा नामक कर्म का उदय था। ये परिस्थितियाँ इस प्रकार की बनती हैं। उदयजन्य परिस्थितियों को पहचान लो तो किसी से राग-द्वेष का काम नहीं हो। चारित्र मोहनीय कर्म के उदय में इतनी बात कही।

यहाँ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जब इसप्रकार के परिणाम हों तब तो उदय निमित्त है लेकिन उदय ने परिणाम करवाये हैं ऐसा नहीं है। किसी व्यक्ति को गुस्सा आया इसका मतलब उसके क्रोध नामक प्रकृति का उदय चल रहा था। चारित्र मोहनीय कर्म में क्रोध नामक कर्म जो पहले बांधा था उसका उदय आया। ये इस तरह के कर्म हैं कि जैसे अपने भाव होते हैं, वैसा कर्म बंधता है। पहले जैसा कर्म बांधा था वर्तमान परिणाम उसको बतला रहा है जैसे नोकर्म हमें दिखाता है कि द्रव्य कर्म कैसा बंधा था। हम कह रहे हैं कि अभी किसी व्यक्ति को गुस्सा आया। वह गुस्से का परिणाम दिखाता है कि उदय कैसा चल रहा है

अर्थात् चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से क्रोध रूप परिणाम हो रहे हैं।

परिणामों को इस तरह सम्भालिए

यह तो समस्या हो गयी क्योंकि अब मेरे हाथ में कुछ नहीं रहा। अब मैं क्या करूं, गुस्से का उदय आ रहा है। लोभ का भाव आ रहा है तो कहता है कि मैं क्या करूँ चारित्र मोहनीय के लोभ का उदय है। किसी से कहा कि क्यों इतने मायाचारी के परिणाम रखते हो तो कहता है कि मैं क्या करूँ चारित्र मोहनीय के माया कषाय का उदय है। गुस्सा यदि कर्म के उदय से आ रहा है, मायाचार यदि कर्म के उदय से हो रहा है, लोभ यदि कर्म के उदय से हो रहा है तो व्यक्ति कहता है कि मैं तो चिंता मुक्त हो गया, मैं क्या करूँ, अब मेरे हाथ में क्या है? लेकिन आप इस धोखे में मत रहना बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है कि उदय आए और यह जीव क्रोध न करे यह इसके पुरूषार्थ पर निर्भर करता है अर्थात् उदय आए क्रोध कषाय का और यह गुस्सा न करे तो भाव कर्म नहीं हुआ और भाव कर्म नहीं हुआ तो द्रव्य कर्म भी नहीं हुआ। ऐसे में कर्म का यह चक्र टूट गया फिर क्या होगा, फिर मोक्षमार्ग शुरू हो जाएगा। कितना सरल काम है।

चारित्रमोहनीय द्रव्यकर्म का भेद है जबकि इसके उदय से होने वाले परिणाम भावकर्म हैं। ये जो भाव हैं ये पूरे चक्र के बिन्दु हैं इस चक्र को तोड़ने के लिए कहीं तो कुछ विराम होना चाहिए, नहीं तो यह चक्र टूटेगा कैसे? यदि यह चक्र नहीं टूटेगा तो मोक्षमार्ग शुरू नहीं होगा। भावकर्म से इसकी कंट्रोलिंग शुरू होगी, इसकी मंदता शुरू होगी। क्या हम इसको खुला छोड़ देवें, क्या हमारे हाथ में कुछ नहीं है। टोडरमलजी कहते हैं– स्वयं तो महंत बना रहना चाहता है, अपना दोष कर्म आदि पर लगाता है। अरे, ये तेरा अपराध है अपने परिणामों को सम्भाल, उन्हे क्यों नहीं

सम्भालता है। हमारे हाथ में भाव कर्म को सम्भालना है और हमें उस पर ही नियंत्रण करना है। यदि गुस्सा आ रहा है तो चारित्रमोहनीय पर दोष नहीं लगाओ कि मैं क्या करूँ? ये तो क्रोध प्रकृति का उदय था इसको संभालना आपका अपना वर्तमान पुरूषार्थ है।

जब स्वयं को गुस्सा आये तो अपने भावों को सम्भालें और दूसरे को गुस्सा आये तो ऐसा विचार करें कि इसके द्रव्य कर्म का उदय है। मान लीजिए हमारा पड़ोसी गुस्सा कर रहा है अथवा परिवार का कोई सदस्य गुस्सा कर रहा है तब समझना कि इसकी गलती नहीं है इसके क्रोध का उदय आ रहा है, थोड़ी देर बाद क्रोध का उदय शांत हो जायेगा तब इसका गुस्सा भी शांत हो जायेगा। हम प्रेक्टिकल देखते हैं कि कितनी देर गुस्सा रहता है, किसका गुस्सा कितनी देर चलेगा। सबको थोड़ी देर गुस्सा आता है और थोड़ी देर बाद चला भी जाता है। गुस्सा हमेशा नहीं रहता। चाहे क्रोध हो, मान हो, माया आदि का परिणाम हो; कोई भी भाव हो इनमें उतार-चढ़ाव चलता रहता है।

क्रोध में तीव्रता है तो तीव्र क्रोधकर्म का उदय चल रहा है। क्रोध में मंदता है, तो मंद क्रोध कर्म का उदय चल रहा है। सामने वाले को देखकर सहज रहो। हमें कषाय जन्य परिणाम आ रहा हो, तब नियम से कर्म का उदय है और उदय हो तब गुस्सा आए ही यह अनिवार्य नहीं है। गुस्सा आ गया तब तो चारित्र मोहनीय कर्म का उदय है लेकिन चारित्र मोहनीय कर्म का उदय आया तब गुस्सा करना ही पड़े ऐसा नहीं है। कर्म तो प्रेरित करेगा लेकिन नियंत्रण करना यह हमारा पुरूषार्थ है, इसमें शक्ति लगेगी। तत्त्वज्ञान के अवलम्बन से क्रोध का प्रसंग आने पर भी हम शांत रह पाये तो कषाय उत्पन्न नहीं होगी। यह कषायों को जीतने का उपाय है। हमें कषायों को जीतना है। क्योंकि यदि हम

कषायों को नहीं जीतेंगे तो यह कषाय चक्र हमें खत्म कर देगा; यह न केवल अन्दर से बल्कि बाहर से भी समाप्त कर देगा।

तनाव कौनसी बीमारी है? आज हर घर में तनाव के रोगी मिल जायेंगे। तनाव अर्थात् मानसिक रूप से अस्वस्थ होना लोग इस बात से दु:खी हैं कि उसने मुझे ऐसा क्यों कह दिया। इस बात से दु:खी हैं कि इतना सा बच्चा मेरे सामने जवाब देकर चला गया। कल रखी हुई नौकरानी मुझे जवाब देकर चली गई। अत: दूसरों के परिणामों को देखकर कर्मोदय विचारना और साम्यभाव को प्राप्त हो जाना। स्वयं के परिणामों को आगामी बंधन से बचने हेतु सम्भाल कर रखना।

इसका दिमाग गरम है अब इसको ठण्डा कैसे करें। दिमाग का गरम होना इतनी दुखदायी पीड़ा है कि यह जीव आत्महत्या करके सुखी होना चाहता है, मरना चाहता है। कषायों की वेदना सहन नहीं होती है। ये पीड़ा सहन नहीं होती है। देवगति के जीवों का दुख है- ईर्ष्या। जिसे मानसिक दुख कहते हैं। देवगति में शरीर में कोई तकलीफ नहीं है। देवों का वैक्रियक नाम का शरीर होता है। उनके शरीर में रोग नहीं होते, तकलीफ नहीं होती। लेकिन मानसिक दु:ख जिसे हम टेंशन/ डिप्रेशन कहते हैं जिसे हम आकुलता, बैचेनी कहते हैं, ये बहुत अधिक होते हैं। ये सब मानसिक दुख हैं जो हमें भी ज्यादा तकलीफ देते हैं।

आपने कभी अखबार में ऐसी खबर नहीं पढ़ी होगी कि किसी व्यक्ति के घुटनों में इतना दर्द था कि उसने आत्महत्या कर ली क्योंकि घुटनों के दर्द से कोई व्यक्ति आत्महत्या नहीं करता। किसी व्यक्ति के सिर में इतना तेज दर्द था कि वह जहर खाकर मर गया। शारीरिक तकलीफ कितनी भी ज्यादा हो, शरीर में कितना भी दर्द हो व्यक्ति कभी

आत्महत्या नहीं करता लेकिन आपने ये खबर कई बार पढ़ी होगी कि पिता ने बेटे को डाँट दिया और बेटा घर छोड़कर चला गया, फिर कभी घर नहीं आया। बोर्ड का रिजल्ट लेने गया था रिजल्ट देखकर वापस कभी घर नहीं आया। ये क्या हुआ? तब मालूम चला कि फैल हो गया था और उसने आत्महत्या कर ली। ऐसा क्या हुआ, उसके पेट दर्द था? सिर दर्द था? शरीर में कहीं दर्द था? नहीं उसके दिमाग में यह बात चल रही थी कि लोग क्या कहेंगे? पिताजी ने ऐसा कैसे कह दिया अथवा पत्नी ने ऐसा कैसे कह दिया। मुझे पति ने ऐसा कैसे कह दिया। ऐसे कैसे पलट कर जवाब दे दिया। चार लोगों के सामने मेरी बेइज्जती कैसे कर दी। ये सब मानसिक तकलीफें है। ये मानसिक दुःख चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से होते हैं। हम चारित्र मोहनीय कर्म का उदय नहीं चाहते हों तब चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से बचें और बचने का उपाय यह है कि जब भी इसके उदय में तीव्र परिणाम होने की परिस्थिति बने, तब तत्त्वज्ञान का अवलंबन लेकर अपने परिणामों को शांत रखें।

वीतरागता का अवलंबन लेकर, जिनवाणी का अवलंबन लेकर, वस्तु स्वरूप का विचार करके अपने परिणामों को शांत करने की कोशिश करें।

दशलक्षण पर्व पूजन उत्तमक्षमा के अर्घ्य में कहा –

'जे करम पूरव किये खोटे, सहे क्यों नहीं जीयरा'

मेरी भावना की आखिरी पंक्ति –

'वस्तु स्वरूप विचार खुशी से सब दुःख संकट सहा करें'

ये वस्तु स्वरूप क्या है? यही तो है जिसकी चर्चा हम कर रहे है। विचार करो कि ये होनहार है, ऐसा ही होना है। जो होना था सो हो गया,

अब क्या करें। कम-से-कम नया कर्म नहीं बांधेगे। वर्तमान में आकुलता के परिणाम, चिंता के परिणाम से यह जीव नया कर्म भी तो बांध रहा है। अकेले पुराने का ही सवाल कहाँ है? नया कर्म भी तो बंध रहा है और नया बंधेगा तो फिर वही चिंता। हमारी वर्तमान की चिंता, नयी चिंता को आमंत्रण दे रही है, इसलिए वर्तमान परिणामों को सम्भालो। सम्भालने का उपाय जिनवाणी है, सम्भालने का उपाय शिविर, प्रवचन, व्याख्यान, कक्षाएँ, पाठशालाएँ – ये सब हैं। हम यहाँ आये हैं तो स्वयं का ही भला है और नहीं आये होते तो किसका बुरा होता? हमें ऐसा लगता है कि हमने आकर आप पर एहसान किया है। आपने बुलाया तो हम आ गये। अब हम बुलायेंगे तब आप भी ध्यान रखना।

हमें पढ़ने का लाभ मिला, हमें यह चर्चा पढ़ने को मिली। तो हमारा जीवन बदल गया, हमारे सोचने का तरीका, नज़रिया बदल गया यह महत्त्वपूर्ण बात है। यदि नहीं पढ़ते तो इस लाभ से वंचित रह जाते। ये चारित्र मोहनीय ने हमें सिखाया है।

नोकषाय का वर्णन

क्रोध-मान-माया-लोभ ये चार तो मोटे-मोटे कर्म बताये हैं। इसके अतिरिक्त हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरूषवेद और नपुंसकवेद – ये नौ नोकर्म हैं। कोई प्रसंग ऐसा चल रहा था और सामने वाले व्यक्ति ने हंस दिया। यह व्यक्ति हंसा तो दूसरे व्यक्ति को गुस्सा आ गया अब इसको गुस्सा आया तो सामने वाले की हंसी भी गुस्से में बदल गई और रामायण का पाठ चलते-चलते महाभारत शुरू हो गई। एकदम माहौल बिगड़ गया। तो कहते हैं कि शांति रखो, धैर्य रखो। जानो बस जानो और देखो। जो हो रहा है उसे

ज्ञाता-दृष्टा भाव से देखो। यह जैन दर्शन सहज रहने की कला सिखाता है। इसके बाद है भय - छोटीसी चीज से डर जाता है और कभी बड़ी-बड़ी चीजों से नहीं डरता है। क्यों नहीं डरा क्योंकि उस समय भय का उदय नहीं चल रहा था। अब क्यों डर गया तो भय रूपी कषाय का उदय आ गया। हम लगातार कर्म की चर्चा कर रहे हैं। हम अपने जीवन की हर एक घटना को बारीकी से देखने की कोशिश करेंगे तो हमें पीछे बांधा गया कर्म झलकता हुआ दिखाई देगा। हर चीज को, हर परिस्थिति को, चाहे चश्मा टूट गया हो, आँखें खराब हो गईं हों, कहीं दर्द हो रहा है, नींद तेज आ रही है, भूख लग रही है, कोई चोरी करके चला गया, किसी ने धोखा दे दिया सारी चीजों में हम यह कर्म के प्रभाव को लगाएँगे, तो हमें द्रव्य कर्म का उदय नज़र आयेगा।

द्रव्य कर्म का उदय आया इससे संयोग मिले अब इस भाव को सम्भाले रहना यह हमारे हाथ में है। हमने यदि अपने परिणाम सम्भाल लिए तो परिवार भी सम्भल जायेगा। आपने परिणाम सम्भाल लिए तो बिजनेस भी सम्भल जायेगा क्योंकि सब परिणामों का ही खेल है। हमने सामने वाले को देखा और परिस्थिति किस कारण से घटित हुई थी इसका विचार किए बिना एकदम पलटकर जवाब दे दिया, गुस्सा करने लग गये। जैसे - बच्चा देर से घर आया और हम उस पर एकदम से बरस पड़े। जब हमने उसकी दास्ताँ सुनी तो हमारी आँखों से आंसू झर गये कि अरे! मैंने इसको गलत ही डाँट दिया। पहले सुन तो लेता कि क्यों देर हो गई। सीधे गुस्सा करना जरूरी नहीं है; क्योंकि हमें पता नहीं है कि क्या कारण है, क्या परिस्थिति है। हम उस समय यदि थोड़ा-सा धैर्य रख लें तो बड़े से बड़े अनर्थ होने से बच जाते हैं। यह चारित्र मोहनीय कर्म हमें परिणामों को सम्भालने की कला सिखा रहा है;

क्योंकि आज जितने भी घर टूटते हैं, बिखरते हैं उनके पीछे सही बात को न समझना सबसे बड़ा कारण है। इसका अर्थ यह है कि हमने चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से होने वाले परिणाम को सम्भाला नहीं है।

तेजी/उग्रता, तत्काल रिएक्शन/तुरंत प्रतिक्रिया कर देना ये विवाद के कारण हैं। यदि हम 2-4 मिनिट शांति से सोच लें तो कुछ भी विवाद ही नहीं रहे।

मुझे एक क्रोध का प्रसंग याद आता है कि एक महिला थी और वह घर में नेवला पालती थी। उसका ६ माह का बच्चा था जो पालने में झूलता था। वह नेवला पालतू था घर में ही रहता था और उसके भरोसे वह महिला अपने बच्चे को घर में छोड़कर चली जाती थी। एक बार महिला कुएँ पर पानी भरने गई और नेवले के भरोसे ही बच्चे को छोड़ गई। जहाँ बच्चा था उस कमरे में साँप आ गया। वह बच्चे को डसने वाला था तभी नेवले ने उस साँप को रोका और आपस में झगड़ा हो गया नेवले ने साँप के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। बच्चे को बचा लिया लेकिन वह नेवला पूरी तरह से लहुलूहान हो गया और वह नेवला सूचना देने के लिये दरवाजे से बाहर दौड़ता हुआ जा रहा था उधर से उस बच्चे की माँ आई उसने देखा कि नेवले के शरीर पर खून लगा हुआ है, उसे लगा कि नेवले ने उसके बच्चे को खा लिया और यह सोचकर उसने मटका उस नेवले पर पटक दिया और दौड़ती हुई घर में गई। देखा तो बच्चा तो मस्ती से पालने में झूल रहा था, हंस रहा था, खिलखिला रहा था। और वहीं साँप मरा हुआ पड़ा था लेकिन अब पछताने से क्या होगा? जब पहले ही हमनें किसी कार्य के संबंध में निर्णय कर लिया है। यदि थोड़ा धैर्य रखकर, विचार करके निर्णय लें तो तुरंत क्रोध नहीं हो, अभिमान नहीं हो, छोटी-छोटी सी चीज में मायाचारी नहीं हो,

छल-कपट नहीं हो, कोई भी विकार हो उस पर थोड़ा नियंत्रण रख लें, तो सारे काम व्यवस्थित हो जायें।

हमें मारने बचाने वाला कौन?

आयुकर्म – अब आयु कर्म की बात कर रहे हैं। चार गतियाँ होती है मनुष्य, तिर्यंच, देव और नरक। सर्वप्रथम हम यहाँ नरक की बात कर रहे हैं कि जीव नरक में क्यों जाता है? नरक का वातावरण अत्यंत खराब है, वहाँ की परिस्थिति बहुत प्रतिकूल है। नरक अर्थात् जहाँ बहुत मारपीट मची रहती है। जहाँ खाने-पीने की व्यवस्था नहीं रहती है। जहाँ जीव सर्दी, गर्मी के दु:ख भोगता रहता है। शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देने के बावजूद भी मरता नहीं है। ऐसी स्थिति का नाम नरक है। नरक में कोई नहीं जाना चाहता है। किसी से पूछो नरक जाना है, सब मना कर देंगे। एक दिन मैंने सोचा नरक में कोई जाना नहीं चाहता है तो नरक खाली पड़े होंगे। नरक में जाना तो कोई नहीं चाहता है; लेकिन काम ऐसे करते हैं कि नरक में जाना पड़ता है। नरक नहीं चाहने से फर्क नहीं पड़ेगा, वे काम बंद करने होंगे जिनसे नरक गति प्राप्त होती है।

नरक आयु कर्म के आस्रव से हमें बचना होगा। नरकादि आयु कर्मों का आस्रव कैसे होता है? ये जीव ऐसा क्या काम करता है जिससे इसे नहीं चाहते हुए भी नरक में जाना पड़ता है। कोई जीव मरकर भले ही किसी भी गति में जाए पर मरने के बाद उसके नाम के आगे स्वर्गीय तो लिख ही देते हैं। जीवन भर चाहे कितने भी पाप किये हों। भले ही वह मरकर नरक में गया हो। हम उसको जिन्दगी भर गालियाँ देते रहे हों। हम यह भी जानते हैं कि ये तो इतना पापी था कि हरगिज स्वर्ग में नहीं जा सकता, उसके बावजूद भी हम कहते हैं स्वर्गीय श्री .... स्वर्गवासी.......। यहाँ नरक में जाने के कारण बतला रहे हैं।

बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः।।15।।

ना रत: इति नारक: जिस गति में जीव रहना पसंद नहीं करता। नरक की जो भूमि होती है, उस भूमि को स्पर्श करते ही ऐसा लगता है, जैसे करोड़ों बिच्छुओं ने काट लिया हो। करंट आता है, व्यक्ति उछलता है। जन्म लेते ही नरकी कई धनुषों तक उछल जाता है। सभी नरकों की अलग-अलग व्यवस्था है। सातवें नरक में 500 धनुष तक उछल जाते हैं लेकिन क्या करे मजबूरी है। मरना चाहते हैं लेकिन मर नहीं सकते हैं। नरक में जाने का कारण बतलाया है बहु आरंभ परिग्रहत्वं। बहुत आरंभ और बहुत परिग्रह का भाव नरकायु के आस्रव का कारण है। क्या जितने पैसे वाले लोग है सब नरक गति में जायेंगे? नहीं! ऐसा नहीं है। आरंभ और परिग्रह का मतलब पैसा ज्यादा है, इसलिए नरक जाएँगे - ऐसा नहीं। अपितु उसके प्रति जो ममत्व बुद्धि है, एकत्व बुद्धि है, उसका नाम परिग्रह है। ज्यादा पैसा होना नरक गति का कारण नहीं है लेकिन ज्यादा इकट्ठा करने का भाव, ज्यादा आसक्ति का भाव, मेरे पास और होना चाहिए, ये जो परिणाम है यह नरक ले जाने वाला है। क्रिया कुछ भी हो, फल तो परिणामों का लगता है।

साता वेदनीय का तीव्र उदय हो तो घर में सम्पत्ति होगी ही। सम्पत्ति का होना अथवा नहीं होना वह हमारे हाथ में नहीं है। हम नहीं चाहते पर सम्पत्ति बहुत है। बिजनेस भी बढ़ रहा है। हम कम करना चाहते हैं पर वह बढ़ रहा है। ऐसे-ऐसे लोग भी देखे जाते हैं कि जो सम्पत्ति, धन से इतने परेशान हो गये कि उन्होंने नौकरों से कहा कि जमीन खोदकर इस धन को गाढ़ दो। मुझे नहीं चाहिए। पर जमीन खोदी तो फिर धन निकल गया अब क्या करें? यदि हमारे साता वेदनीय कर्म का इस तरह का उदय है तो सम्पत्ति दिन दूनी-रात चौगुनी

बढ़ती रहेगी लेकिन यदि हमें सम्पत्ति के प्रति आसक्ति का भाव है तो हमारी नरक गति निश्चित है। अगर हमें नरक नहीं जाना तो आसक्ति का भाव नहीं रखना चाहिए। हमें अपने भीतर झाँकना होगा कि हमारे अंदर कहीं इस सम्पत्ति के प्रति आसक्ति का भाव तो नहीं है।

एक इंदौर वाले सेठ जी की सच्ची घटना है। सर सेठ हुकमचंदजी, उनकी सात फैक्ट्रियाँ थी। एक बार वे बहुत चिंता में दिखायी दे रहे थे तब सेठानी जी ने पूछा कि इतनी टेंशन किस बात की है। सब सुख शांति है फिर टेंशन क्यों? सेठ जी बोले कि आठवीं फैक्ट्री की बात चल रही है तो सेठानी जी ने कहा कि सेठजी नरक तो सात ही होते है फिर आठवीं फैक्ट्री डालकर कहाँ जाओगे? हम अपनी सम्पत्ति को देखें तो सात पीढ़ियाँ बैठकर खा लें इतनी सम्पत्ति है; लेकिन फिर भी आसक्ति कम नहीं होती है। भोगने की सामर्थ्य नहीं है फिर भी भोगना चाहते हैं। डायबिटीज है, तला, भुना, घी, मीठा सब डॉक्टरों ने मना कर दिया है और अगले जन्म में ले जाने की सामर्थ्य नहीं है। व्यवस्था नहीं है फिर भी आसक्ति घटती नहीं है अब क्या करें?

आसक्ति क्यों नहीं छोड़ पाते कई व्यक्ति कहते हैं कि हम अपने लिए नहीं बल्कि बच्चों के लिए कर रहे हैं। पण्डितजी हमारा जीवन तो जैसा बीतना था वैसा बीत गया, जैसे-तैसे बची जिंदगी भी काट लेंगे। हमें तो जैसी व्यवस्था मिलेगी उसी में अपना जीवन बिता लेंगे लेकिन पण्डितजी बच्चों के लिए करना पड़ता है।

कार्टून चैनल पर एक प्रोग्राम आता है डोरेमोन। उसमें ऐसा दिखाते हैं कि टाइम मशीन में बिठाकर वो 10-15 साल पीछे ले जाते हैं तो कभी 10-15 साल आगे ले जाते हैं ये तो टेक्नोलॉजी है। आज से 40 साल पहले की बात करूँ यदि कोई आपसे यह कहता कि आप विदेश

में बैठे-बैठे भारत में ऐसे बात कर सकेंगे कि जैसे आमने-सामने बैठे हों। आप क्या कर रहे हो सब दिखेगा तब आपको लगता कि ये पागलपन की बातें कर रहा है। ऐसा होता है क्या कभी? ये चीज तो बहुत ज्यादा ही कह दी। क्या बना रहे हो, क्या खा रहे हो, ये सब लाइव दिखने लग जायेगा? नहीं हो सकता था न। ऐसा बोलने वाला आपको तो पागल नज़र आता था।

कोई 40 वर्ष पहले आपसे कहता कि कोई फाइल अमेरिका से भेजों और भारत में सैकेंण्डों में पहुंच जायेगी तब आप कहते कि इम्पोसिबल/असंभव है लेकिन आज हम मेल कर रहे है न, मेल कुछ ही सेकेण्ड में पहुंच जाता है और आज हम आपसे यह बात कहें कि आगे आने वाले 10 सालों में ऐसा हो जाये कि आपसे फेस टू फेस बात करते हुए आपको पता चले कि ढोकला बना है और हमें भी खाना है तब सामने वाला कहे कि रूक अभी डालता हूँ और कुछ सेकण्ड में आपके पास पहुँच जाए। टेक्नोलॉजी बहुत फास्ट चल रही है, कुछ भी हो सकता है। आज हमें आश्चर्य दिखायी दे रहा है कि हम कुछ नहीं कह सकते है, कि पता नहीं कि क्या-क्या हो सकता है। यदि ऐसी टेक्नोलॉजी आ जाये कि हमने इस जीवन में जितना कमाया है वह मरने के बाद हम अपने साथ में ले जा सकें तो कितना बच्चों के लिए छोड़कर जाएँगे? अरे! वह तो ले जाने की व्यवस्था नहीं है इसलिए नहीं चाहते हुए भी छोड़कर जाना पड़ता है। आसक्ति का परिणाम तो अपना स्वयं का है। यदि ऐसा तीव्र आसक्ति का परिणाम रहेगा तो उमास्वामी आचार्य कह रहे हैं कि नरक में जाकर जन्म लेगा।

यहाँ कह रहे हैं कि जिन जीवों को नरक में नहीं जाना है उनको क्या करना चाहिये?

बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः। यदि नरक में नहीं जाना हो तो बहुत आरंभ और बहुत परिग्रह का भाव नहीं रखना। यदि हमने इतनी महत्त्वपूर्ण बात याद नहीं रखी तो कहीं ऐसा न हो जाये कि बहु आरंभ परिग्रहत्वं करके नरक में जाने की तैयारी कर लें, सावधानी तो रखनी पड़ेगी। यदि हम सावधान नहीं रहे तो कहीं भी जाना पड़ सकता है। हम मरकर कहाँ जायेंगे, ये तो हमें पता नहीं है। जीवन तो किसी भी व्यक्ति का कभी भी पूरा हो सकता है। अब वह मरकर कहाँ जायेगा। इसका आधार क्या है। इसका आधार–आयुकर्म है। आयुकर्म जैसा बंधा होगा वैसा फल पायेगा।

कोई व्यक्ति नरक में गया तो क्यों गया क्योंकि उसने नरक आयु कर्म बांधा था। नरक आयुकर्म इसलिये बांधा क्योंकि उसने बहुत आरंभ और परिग्रह के परिणाम किये थे। आरंभ अर्थात् उठा–पठक कि कैसे दो के चार किये जाये दिमाग में यही चलता रहता है। दो के चार ये तो पुराने समय की बात थी आज तो व्यक्ति दो के दो सौ करना चाहता है। लोग टेक्निक बताते हैं कि ये कम्प्यूटर के पार्ट्स आते हैं इनकी दो पैसे की भी कीमत नहीं होती। कम्प्यूटर में जो चीज यदि 2–5 पैसे की लगती है वहीं चीज 200–500 रूपये में बिकती है। सब बिजनेस वाले लोग कहते हैं कि यदि ये काम नहीं किया होता तो आपको चांदी की थाली में नहीं खिला पाते। सब तरह के लोग मिलते हैं, सब तरह की बातें कहते हैं।

मैंने कहा यहाँ तो चांदी की थाली में परोस दिया लेकिन आगे स्थिति ऐसी होने वाली है कि न थाली मिलेगी, न रोटी मिलेगी और न ही अन्न का दाना मिलेगा क्योंकि बहुआरंभपरिग्रहत्वंनारकस्य आयुषः। ये जो आसक्ति का परिणाम है। ये जो जोड़ने का परिणाम है ये अधोगति में ले जायेगा, एक क्षण में यहाँ से तो छूट गयालेकिन वहाँ तड़फता रहता

है फिर सोचता रहता है कि मुझे यहाँ से कोई निकाल दे, मैं मर जाऊँ, एक बार जीवन पूरा हो जाये। ऐसा नरक का स्वरूप है।

परिग्रह के भेद :– एक चक्रवर्ती के पास अटूट वैभव है लेकिन आसक्ति नहीं है। चक्रवर्ती ज्यादा परिग्रही है या हमारे पास ज्यादा परिग्रह है? परिग्रह 24 प्रकार के है। 10 बहिरंग और 14 अंतरंग। 14 अंतरंग में पहला मिथ्यात्व नाम का परिग्रह है फिर क्रोध-मान-माया-लोभ फिर हास्य रति-अरति आदि। 10 बहिरंग - महल, मकान, कपड़े बर्तन आदि। हमारे पास पूरे 24 परिग्रह है। चक्रवर्ती भरत, सम्यग्दृष्टि थे अर्थात् मिथ्यात्व नामक एक परिग्रह तो वैसे ही उनके पास कम था। भरत चक्रवर्ती के पास 23 परिग्रह थे और हमारे पास 24 परिग्रह हैं। तो कौन ज्यादा परिग्रही हुआ? परिग्रह तो आसक्ति को कहते हैं। एक व्यक्ति महल-मकान के बीच में खड़ा हो सकता है तो भी वह अपरिग्रही हो सकता है और दूसरा व्यक्ति जो महल-मकान को छोड़कर जंगल में बैठा हो वह भी परिग्रही हो सकता है। यह बात सिद्ध भी हो सकती है कि वह महल वाला परिग्रही नहीं है, जंगल वाला परिग्रही है। ये कैसे संभव है। इतिहास में ऐसे बहुत उदाहरण, घटनाएँ है।

ममत्व का नाम परिग्रह :– एक वारिषेण नाम के मुनिराज हुए हैं। वे वारिषेण मुनिराज राजघराने से थे वे सब कुछ छोड़कर दीक्षित हो गए। एक बार वे आहारचर्या के लिए जिस श्रावक के यहाँ पहुंचे उस श्रावक का नाम पुष्पडाल था। वह पुष्पडाल और वारिषेण बचपन के दोस्त थे। जब वे आहार लेने के लिये पुष्पडाल के यहाँ पहुंचे तो पुष्पडाल ने पहचान लिया कि यह तो मेरे बचपन का मित्र है। बड़े दिनों के बाद यह मेरे साथ भोजन करेगा, बड़ा आनंद मिलेगा बचपन की यादें ताजा हो जायेगी। वारिषेण ने आहार लिया और कुछ बोले नहीं। वे जाने लगे,

तब उनके मित्र पुष्पडाल को बड़ा आश्चर्य लगा कि इसने मुझे पहचान तो लिया ही होगा क्योंकि हम बचपन के मित्र है फिर भी ये मुझसे बोला क्यों नहीं। वह वारिषेण मुनिराज के साथ-साथ चलने लगा कि कभी तो बोलेंगे। लेकिन वारिषेण मुनिराज के मन में कोई विकल्प नहीं चल रहा था। 100 कदम चलने के बाद मुनि वारिषेण ने देखा तो उस मित्र से बोले कि क्या साथ चलने का ही विचार है। मित्र बोला - हाँ! क्यों नहीं। मुनि ने फिर पूछा कि हमारे साथ ही रहोगे क्या? श्रावक पुष्पडाल कुछ बोल नहीं पाया और साथ में चल दिया और फिर पुष्पडाल की दीक्षा हो गयी।

एक-दो दिन ही हुए थे कि उन पुष्पडाल को अपनी पत्नी की याद सताने लगी। वह बेचारी मेरा इंतजार कर रही होगी। मैं तो उससे कहकर भी नहीं आया, एक बार उससे कह कर तो आ जाता कि मैं जा रहा हूँ। उसकी पत्नी कानी थी। उसकी एक आँख कम थी। उन पुष्पडाल ने दीक्षा तो ले ली लेकिन पत्नी का मोह नहीं छूट रहा था। वारिषेण को लगा कि 15 दिन बीत गये लेकिन इसे तो घर ही घर की याद आ रही है। इससे 1 पत्नी का मोह नहीं छूट रहा है। उन वारिषेण मुनि ने अपनी माँ को संदेश भेजा कि मेरी जो 32 पत्नियाँ थीं उनको साज-श्रृंगार कराकर तैयार रखना हम राजमहल आ रहे हैं। माँ को जब यह संदेश मिला तो वह हक्की-बक्की रह गई कि क्या मेरा बेटा संसार में आना चाहता है? रानियों को सज-धज कर रहने के लिये क्यों कहा, ये प्रश्न माँ के दिमाग में घूमने लगे। माँ ने उन वारिषेण के लिए दो आसन लगवाये एक सोने का सिंहासन और दूसरा लकड़ी का आसन। माँ ने सोचा यदि रागी हो गया होगा तो सोने के सिंहासन पर बैठेगा और यदि वीतरागी ही है तो लकड़ी के आसन पर बैठेगा। जब वे वारिषेण

मुनि आये तो लकड़ी के पाटे पर आसन लगाकर बैठ गये और पुष्पडाल सोने के सिंहासन पर बैठ गए फिर वारिषेण मुनि बोले कि सभी रानियों को बुलाओ, सभी 32 रानियाँ आयीं, सब एक से एक अप्सरा जैसी थी लेकिन उन मुनिराज का उद्देश्य था कि वे पुष्पडाल का हृदय परिवर्तन कर सकें। वे उसे बतलाना चाहते थे कि मैंने जब से इन पत्नियों को छोड़ा है तब से मुझे इनका एक भी बार विकल्प तक नहीं आया और तुम्हें उस एक कानी पत्नी का ही विकल्प सताता रहता है।

अब आप बताइये कि वारिषेण मुनिराज जो राजमहल में बैठे हैंवे परिग्रही है या नहीं और जो पुष्पडाल मुनिराज जंगल में बैठे थे, वे परिग्रही हैं या नहीं? पुष्पडाल जो जंगल में बैठे है तो भी परिग्रही हैं और ये वारिषेण राजमहल में हैं, पत्नियाँ बगल में सज-धज कर खड़ी हैं और उसके बावजूद भी ये परिग्रही नहीं है? तो परिग्रह होने का कारण क्या है।

हम कौनसी जगह पर हैं? कहाँ बैठे हैं? इससे फर्क नहीं पड़ता है। हम बाहर से कहाँ है इससे फर्क नहीं पड़ता है। हमारे अंदर क्या है इससे फर्क पड़ता है इसलिए परिग्रह बाहर की वस्तु का नाम नहीं है। परिग्रह तो अंदर के भावों का नाम है। अंदर से जो आसक्ति का भाव है अंदर से जो लगाव है उसका नाम परिग्रह है।

यहाँ सूत्र में नरक जाने का कारण बहुत आरंभ और परिग्रह बताया। किसी का भी उद्देश्य नरक में या तिर्यंच गति में जाने का नहीं है।

तिर्यंच आयु के बंध के कारण

तिर्यंच गति में भी नहीं कहे जा सकने वाले अनेक दुःख भरे पड़े हैं। उनके दुःखों को हम देखें तो ज्ञात होता है कि वे कैसे-कैसे दुःख भोगते हैं। यदि आप तिर्यंच गति में जाना नहीं चाहते हो तो आगामीसूत्र देखो

माया तैर्यग्योनस्य।।16।।

मायाचारी, छल-कपट, धोखाधड़ी के फल में तिर्यंच गति की प्राप्ति हो जाती है। किसी को धोखा देने का भाव। 2 के 20 और 20 के 200 करने के जो भाव है, यही मायाचारी है। हृदय में तो मायाचारी भरी है। हम दुकान पर जाते हैं और दुकानदार हमसे कहता है कि अरे! आपसे तो बिना फायदा लिए जितने में आया है उतने में ही आपको दे रहे हैं। अरे भाई! हम सब समझते हैं कि बिजनेस क्या होता है। यदि आपके पिताजी भी खरीदने आयेंगे तो उनको भी आए हुए भाव में नहीं देंगे, इसका नाम बिजनेस है। हाँ, ये हो सकता है कि औरों से जितना कमा रहे हो उतना हमसे नहीं कमाओ लेकिन फायदा लिए बिना इस तरह साधर्मियों को देने लगे तो दुकान खोल कर बैठे ही क्यों हो भाईसाहब? मन में छल का भाव, मायाचारी का भाव, धोखाधड़ी का भाव, बेईमानी का भाव चलता है, कहता कुछ है, करता कुछ है। सोचता कुछ है, बताता कुछ है; परन्तु यह मायाचारी का परिणाम तिर्यंच गति में ले जाता है। मायाचारी में आड़े-टेढ़े परिणाम होते हैं।

सोच कुछ रहे है और बोल कुछ रहे हैं। कोई मुझसे ये पूछेगा तो ऐसा कह दूँगा। शिक्षक यदि पूछेंगे कि आज होमवर्क क्यों नहीं किया तो कह दूंगा कि आज हम बाहर चले गये थे या तबीयत खराब हो गई थी ऐसी मन में प्लानिंग करते रहते हैं। चाहे कोई हमसे पूछे या न पूछे। अरे, कल प्रवचन में नहीं गया था, पण्डित जी पूछेंगे तो ऐसा कह दूंगा या वैसा कह दूंगा; लेकिन पण्डित जी न तो पूछने वाले हैं न कुछ कहने वाले हैं, तुम्हारे दिमाग में जबरदस्ती की खिचड़ी पक रही है। ये ही तो मायाचारी का परिणाम है। ये जो परिणामों में तिरछापन है इससे तिरछा शरीर मिल जाता है फिर सीधे खड़े भी नहीं हो सकते हैं। पशु ऐसी ही स्थिति में होते हैं।

उनके हाथ-पैर दोनों ही नीचे होते हैं। जैसे हाथ हैं वैसे पाँव हैं। ये तिरछी गति, तिरछे परिणामों का फल है। मायाचारी का फल है किसी के साथ में छल किया हो और वह प्रकट हो जाये तब क्या हाल होता है।

माचायारी नहीं, सरल परिणाम रखो। अच्छे रहो, सरल रहो, ज्यादा बेईमानी हमें करना नहीं, ज्यादा झूठ हमें बोलना नहीं। जैसी भी परिस्थिति है, वो ठीक है। हम तो वेदनीय को समझ चुके हैं। यदि वेदनीय कर्म को हमने नहीं समझा होता तब तो मायाचारी करते, अब वेदनीय कर्म पढ़ लिया तो सुबह से शाम तक मेहनत करो उसके बाद भी जितना मिलना है, उतना ही मिलेगा। साता वेदनीय कर्म कहता है कि इतना ही मिलेगा, अपना इतना ही नियंत्रण (कॉन्ट्रेक्ट) है। अब जब इतने का नियंत्रण (कॉन्ट्रेक्ट) है तब तुम कितनी भी मेहनत करो, उतना ही मिलेगा। अब क्या करें तो कहता है थोड़ी-सी मायाचारी तो करनी ही पड़ती है तो ऐसे परिणामों से तिर्यंच का बंधन कर रहा है।

एक सेठ जी थे, गाँव में रहते थे। सेठजी का स्वभाव बहुत सरल था, सज्जन थे। कोई धार्मिक व्यक्ति गाँव आता था तो उसे खाना खिलाने के लिए घर में ले आते थे, चाहे अपरिचित ही क्यों न हो। सेठानी जी पति की इस आदत से बहुत परेशान थीं। वे सोचतीं कि ये रोज-रोज किसी न किसी को पकड़ कर ले आते हैं। कोई जान न पहचान और घर लाकर खाना खिलाते हैं। इन सेठजी का तो कुछ नहीं बिगड़ता है ये तो खाना खिलाकर अच्छे बन जाते हैं पर सारी मेहनत तो हमें करनी पड़ती है। सेठजी की इस आदत से सेठानी जी परेशान रहतीं थीं। एक दिन गाँव में जयपुर से एक पण्डितजी आये। मंदिर में दर्शन कर रहे थे, मंदिर से जब वे बाहर निकलने लगे तो सेठजी ने सारा परिचय लिया और खाने के लिए घर पर ले आये।

सेठजी जब पण्डितजी को लेकर घर पहुंचे तो सेठानी जी के माथे पर तीन सल पड़ गई कि फिर ले आये। सेठानी ने सोचा कि आज तो बिल्कुल भी खाना नहीं खिलाऊंगी, सेठानी ने एक तरकीब निकाली, उसने सेठजी से कहा कि आज कुछ अच्छा बनाते हैं आप बाजार से घी ले आओ, सेठजी बड़े प्रसन्न हुये कि आज सेठानी को क्या हुआ? इसके परिणाम तो बहुत बदल गये हैं। आज तो बहुत खुश दिखायी दे रही है। इधर सेठजी घी लेने के लिये बाजार चले गये उधर सेठानी जी ने पण्डितजी से कहा कि आप भले मानस दिखते हो, सज्जन आदमी दिखते हो इसलिये आपको पूर्व की एक घटना बता रही हूँ कि सेठजी को कभी-कभी दौरा पड़ता है। दौरा पड़ने पर पहले तो मेहमान को अच्छी तरह खाना खिलाते हैं और बाद में यह जो सामने लोहे का मूसल पड़ा है इससे खूब धुनाई करते हैं। पण्डितजी तो डर गये, सेठानी बोली आपको पहले से इसलिए बता दिया ताकि खाने के चक्कर में आपकीन धुनाई हो जाये।

पण्डितजी जाने लगे तो सेठानी बोली खाना तो खाते जाइये। पण्डितजी तो उठकर भागे कि यदि हाथ-पैर टूट गए हो तो भोजन करना महंगा पड़ जाएगा। जब सेठजी घर आये तो पूछा कि पण्डितजी कहाँ गये, सेठानी बोली कि वे तो चले गये। सेठजी ने पूछा क्यों चले गये? सेठानी बोली-मैं इस मूसल/दस्ते से काम कर रही थी वे पण्डितजी मुझसे मसूल मांगने लगे पर मसूल मेरे पीहर का था। तो उनको कैसे दे देती। सेठजी बोले इतनी सी वस्तु के लिए तूने मना कर दिया ला मुझे दे मैं देकर आता हूँ।

वे सेठजी उस मूसल/दस्ते को हाथ में लेकर उन पण्डितजी को ढूंढ रहे थे। तभी उन्हें पण्डितजी दिखाई दिए। सेठजी ने पण्डितजी को पीछे से आवाज लगाई। पण्डितजी ने पीछे मुड़ कर देखा कि सेठजी के हाथ

में मूसल/दस्ता है। पण्डितजी ने सोचा-हमेशा तो इनको भोजन करने के बाद दौरा पड़ता था शायद आज पहले ही पड़ गया। पण्डितजी दौड़े उनको दौड़ते हुए देखकर सेठजी सोच में पड़ गये कि ये चक्कर क्या है? सेठजी ने जोर से बोला कि आप नाराज़ मत हो इसे ले जाओ। पण्डितजी ने सोचा जरूर कुछ न कुछ बात है ये पिटाई करने के लिये तो नहीं आये है। कोई तो बात होगी। पण्डितजी रुक गये। दोनों में आपस में चर्चा हुई तब सेठजी को वास्तविकता का पता चला।

ये तो छोटी-सी मायाचारी की घटना है कि व्यक्ति छोटी-छोटी बातों में क्या से क्या कह देता है। हमें कुछ पता नहीं चलता है होश नहीं रहता है। बहुत सावधान सतर्क रहने की जरूरत है। यह जीव मायाचारी के फल में एकेन्द्रिय हो जाता है, निगोदिया हो जाता है। अनंतकाल तक निगोद से निकलने का अवसर नहीं मिलता है, ऐसी अवस्था में चला जाता है। मायाचारी के फल में तिर्यंच, तिर्यंच में भी निगोद अवस्था में चला जाता है। स्थावर में यदि पेड़ बन गया तो हजारों वर्षों तक खड़ा रहेगा। कोई मनुष्य गति के जीव आयेंगे वे तुझे देखकर खुश होंगे और तू दुःखी होता रहेगा।

मनुष्य गति के जीव सुखी होने के लिये कहाँ-कहाँ घूमते रहते हैं। मनुष्यों के सुख के लिए पानी-जंगल-पहाड़ ये ही तो स्थान है। जंगलों में घूमने के लिये जायेगा या समुद्रों के किनारे जायेगा, पानी के पास जायेगा या हिल स्टेशन पहाड़ों पर जाएगा। पानी-पेड़ और पहाड़ ये तीनों तो एकेन्द्रिय हैं। तू एकेन्द्रिय बनेगा तो तकलीफ भोगता रहेगा ये मनुष्य तुझे आ-आकर देखते रहेंगे। कोई पेड़ काटेगा, कोई फल तोड़ेगा, वहाँ हजारो वर्षों तक ऐसे ही काल बीतेगा इसलिये मायाचार नहीं करना। ये तिर्यंच गति में जाने के कारण बताये हैं।

मनुष्य गति :– अब मनुष्य गति में कैसे आये उसके लिये कहा **अल्पारम्भ–परिग्रहत्वं मानुषस्य।।17।।** अल्प आरंभ और अल्प परिग्रह का भाव यह मनुष्य आयु के आस्रव का कारण है। भाव बहुत है कि हम कम से कम आरंभ, परिग्रह करें। अल्प आरंभ और अल्प परिग्रह तो मनुष्य गति में जाने का कारण है ही; लेकिन आगे **उमास्वामी आचार्य कहते हैं – स्वभाव–मार्दवं च ।।18।।**

स्वभाव की सरलता भी मनुष्य आयु के आस्रव का कारण है। सरल स्वभावी हो, सहज हो, मंद कषाय रूप परिणाम हो, सदाचार रूप परिणाम हो, दूसरों के प्रति मदद का भाव हो, हृदय में करूणा भाव हो, ऐसे परिणामों से मनुष्य आयु कर्म बंधता है। पूर्व जन्म में कभी ऐसा हुआ होगा कि परिणाम बहुत सरल रहे होंगे जिसकी वज़ह से आज हमें यह मनुष्य पर्याय मिली है।

चारों गतियों की आयु बंधने का क्या कारण है तब उमास्वामी आचार्य बताते है। **नि:शीलव्रतत्वं च सर्वेषाम।।19।।**

व्रत और शील का अभाव, व्रत अर्थात् अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पाँच व्रत और शील कहते हैं जो व्यक्ति शीलवान नहीं है, जो व्यक्ति अहिंसा–सत्य–अचौर्य आदि का पालन नहीं करता है वह चारों गतियों में रुलता है। सर्वेषाम् अर्थात् सभी आयु, चारों गतियों में इस तरह के परिणामों से भटकता है। यदि असंयमी है तो चारों गति में ये जीव परिभ्रमण करता रहता है।

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबाल–तपांसिदेवस्य।।20।।

देव गति में जाने का पहला कारण सराग संयम है अर्थात् राग सहित संयम हो या फिर थोड़ा संयम हो, थोड़ा असंयम हो ऐसा जोपरिणाम है।

थोड़े बहुत व्रतादिक के परिणाम हुए, कुछ व्रत ले लिए, कुछ व्रत नहीं लिये ऐसे जो परिणाम हुए वह संयमासंयम है,

फिर कहा अकाम निर्जरा। अर्थात् निर्जरा का भाव, त्याग का भाव तो नहीं था पर त्याग हो गया उसका नाम है अकाम निर्जरा जैसे-सुबह कोई व्यक्ति बिना कुछ खाये-पीये कुछ काम से निकल गया, दोपहर में मीटिंग आदि में इतना व्यस्त रहा कि खाने की फुर्सत ही नहीं मिली। अब शाम को घर के लिए निकला। जो व्यक्ति सुबह से भूखा था और शाम को ट्रैफिक में इतना फंस गया कि पहुंचते-पहुंचते रात हो गई। वह व्यक्ति सोचता है, अब रात हो गयी। कल सुबह ही भोजन करेंगे इसलिये खाना छोड़ दिया।

जब रास्ते में था तब उस व्यक्ति को बहुत विकल्प था कि गाड़ी तेज चलाऊँ, किसी दूसरे रास्ते से गाड़ी को घुमा लूं ताकि समय पर घर पहुँच जाऊं लेकिन जब समय सीमा समाप्त हो गयी तब उसका विकल्प टूट गया कि अब नहीं पहुँच सकते। रात को भी उस व्यक्ति ने भोजन नहीं लिया तो ये उपवास कहलायेगा या नहीं? इस बात पर चार लोगों के बीच में चर्चा छिड़ गई। कोई कहता कि ये उपवास नहीं कहलायेगा, कोई कहता कि इस उपवास का फल नहीं मिलेगा, एक सज्जन ने कहा फल तो जरूर मिलेगा, क्योंकि उस व्यक्ति ने रात्रि में नहीं खाने का जो परिणाम है और दिनभर नहीं खाने पर भी जो मंद कषाय से उसने भूख को सहन किया है, ये जो निर्जरा है, यह अकाम निर्जरा कहलाती है।

बुद्धि पूर्वक उपवासादिक करे तो वह सकाम है, इच्छा सहित है, विकल्पपूर्वक किया है लेकिन इस व्यक्ति के तो कोई विकल्प नहीं था। मजबूरी में उपवास हो गया लेकिन परिणामों में शांति है इसप्रकार परिणामों में जो शांति हुई है उसका नाम अकाम निर्जरा है।

बाल तपांसि, बालपन में, नामसझी में, तपश्चरण आदि ले लिया तो ये भी देव आयु के आस्रव के कारण हैं और इसके विपरीत अर्थात् ज्यादा उठा-पटक, अथवा मन में जो आए वह कर रहा है। कुछ भी खा-पी रहा है, शराब पी रहा है, नॉनवेज खा रहा है, पार्टियों में जा रहा है, जवानी के जोश मे व्यक्ति सबकुछ कर रहा है; परन्तु इसे पता नहीं है कि जब इसका फल मिलेगा तब क्या होगा। अभी तो मजा आ रहा है, लेकिन जब फल मिलेगा तब रोयेगा कि ये क्या हो गया, ऐसा क्यों हो गया? फिर पछताने से कुछ नहीं होगा। फिर रोने के अलावा कुछ हाथ नहीं लगेगा। समय रहते सावधान हो जाओ। अपने परिणामों को संभालो, आगे सूत्र में कहते है - **सम्यक्त्वं च।।21।।**

देव आयु के आस्रव का एक कारण सम्यक्त्व भी है।उमास्वामी आचार्य ने सम्यक्त्व को देव आयु का कारण लिखा। तब टीकाकारों-व्याख्याकारों ने कहा कि सम्यग्दर्शन तो बंध का कारण होता नहीं है लेकिन सम्यग्दर्शन के साथ में जो थोड़ा बहुत रागांश है, असंयमांश है। सम्यग्दर्शन के साथ में जो शुभ भाव आदि मंद कषाय के परिणाम है, उनसे देव आयु का आस्रव हो जाता है।

तब प्रश्न होता है कि सम्यक्त्व को अलग से क्यों लिखा उसी सूत्र में जोड़ देते। सम्यग्दर्शन के साथ वाले परिणाम वैमानिक देव की आयु के आस्रव के कारण है। पूर्व में जो चर्चा की थी वह तीन प्रकार के देवायु के आस्रव की चर्चा थी। (भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी) और जो **सम्यक्त्वं च** में बात कही है, वह वैमानिक देवायु के आस्रव का कारण है। यह कहने के लिये अलग से सूत्र दिया है। इस प्रकार चारों गतियों के आस्रव के कारण है, जो आयु नामक कर्म है उस कर्म के आस्रवों के लिये इतने सारे सूत्र दे दिये।

देह को सुंदर-कुरूप कौन बनाता है?

नामकर्म :– नामकर्म का बहुत बड़ा रोल है। इसकी 93 प्रकृतियाँ है। गति–जाति–शरीर–अंगोपांग–निर्माण–बंधन–संघात–संस्थान–स्पर्श–रूप–रस–गंध–वर्ण आदि 93 तरह की प्रकृतियाँ बताई है। ये सारी प्रकृतियाँ शरीर की व्यवस्था सम्भाल रही है। सबकी शक्ल और सबकी अक्ल एक जैसी नहीं है इसके पीछे का कारण नाम कर्म है। शक्ल के पीछे नामकर्म कारण है और अक्ल एक जैसी नहीं होने का कारण ज्ञानावरण कर्म है। सिर्फ शक्ल ही नहीं शरीर का एक–एक अंग, सिर का एक–एक बाल, हाथ का एक–एक नाखून, मुँह का एक–एक दांत, आँखों की पलक का एक–एक बाल, ये सारी चीजें, ये पूरा ढांचा नामकर्म के ऊपर निर्भर करता है। हमारे घुटने कैसे होंगे हमारी आँखें कैसी होंगी। कब अच्छी होंगी, कब बिगड़ेगी, कब आँखों से ज्यादा दिखेगा, कब आँखों से कम दिखेगा, कब अँखाों में मोतियाबिन्द बनना चालू हो जायेगा, ये सभी काम नामकर्म के पास में है। हमें नामकर्म समझ में आ जाये तो शरीर से दृष्टि हट जाये।

नामकर्म का कार्य :–

बाबू युगलजी पूजन में लिखते हैं –

जिसके शृंगारों में मेरा यह महंगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से इस चेतन का कैसा नाता।

स्थिति बड़ी खराब है। हमारा जीवन कहाँ जा रहा है। केवल शरीर की सम्भाल में जीवन बर्बाद हो रहा है। आज शरीर में यहाँ दर्द हो गया इसे सम्भालो। कल दूसरी ज़गह हो गया, वहाँ सम्भालो, इस शरीर को हम कितना सम्भालते हैं। चेहरे पर जरा–सा कुछ हो जाये तो हमें टेंशन

हो जाती है कि ये क्या हो गया? अब तुझे उठते-बैठते यही दिखता है। चेहरे पर एक काला निशान हो जाये तो सोचता है कि मैं इसको कैसे मिटाऊँ? चेहरे को सही करने के लिये क्रीम लगाता है लेकिन जब जो होना है वो होगा ही। इसके परिणमन को रोक नहीं सकता है। चेहरे पर कितनी झुर्रियाँ पड़ती है बाहरी परिस्थितियाँ तो हैं ही लेकिन अंदर की परिस्थिति भी हमारे नियंत्रण में नहीं है। अंदर में कौन-सा रोग, कौन-सी तकलीफ पनप रही है, इसका हमें पता ही नहीं है। यह सारी व्यवस्था नामकर्म के पास है, वह सारी व्यवस्थाएँ संभालता है। वह सुपर कम्प्यूटर है। इसके आगे दुनिया के बड़े से बड़े कम्प्यूटर फैल हैं। इसका ऐसा मैनेजमेंट है एक परमाणु इधर-उधर नहीं होता। नाखून काटते समय कब आपका नाखून ज्यादा कट जायेगा ये आपके हाथ में नही है आप कितना काटोगे और कितना कट जायेगा ये व्यवस्था नामकर्म के पास में है। कौन-सा दांत दर्द करेगा, कब हिलेगा, हिलने के बाद वह दांत निकल जायेगा या वापस फिट हो जायेगा, ये सारी व्यवस्था नामकर्म के पास है। जब व्यवस्था सारी नामकर्म के पास है तो हम जबरदस्ती माथा क्यों लगा रहे हैं? जब व्यवस्थापक कोई दूसरा है तो हमें उस ओर से दृष्टि हटा लेनी चाहिये। सारे कर्मों की ऐसी व्यवस्था है। सब कर्मों ने अपना-अपना डिपार्टमेंट सम्भाला हुआ है।

आवाज कैसी होगी, शरीर कैसा होगा, बाजार में आवाज ठीक करने की गोली मिलती है, चेहरे को ठीक करने का सामान मिलता है जिसके लिये न जाने कितनी हिंसा की जाती है। श्री देवी ने अपनी स्किन के लिये 200 से अधिक ऑपरेशन कराये। फिट रहने के लिये, सुंदर दिखने के लिये, प्लास्टिक सर्जरी मेकअप करती थी, जिससे दिखे नहीं कि मेरी उम्र बढ़ रही है। ये सारी चीजें उसकी मौत का कारण बनीं।

उसके अटैक का कारण बनीं। हमें पता नहीं है कि हम क्या-क्या चीज प्रयोग कर रहे हैं, इसमें कितनी हिंसक वस्तुओं का प्रयोग हुआ है। ये चीजे क्या रिएक्शन करेंगी। किसी की कूबड़ निकली है, किसी के कान खराब है ये सब नामकर्म की संरचना है - यही योगों की वक्रता है।

ये जितने भी पशु हैं वे सब नामकर्म के उदय वाले ही दिख रहे हैं। किसी का शरीर मोटा, किसी का पतला, किसी का टेढ़ा, किसी की कमर झुकी हुई है। किसी के 5 की जगह 6 अंगुलियाँ हैं किसी के 3 अंगुली हैं। किसी के हाथ नहीं है। किसी के पैर नहीं, किसी के कान खराब अलग तरह के व्यक्ति मिलेंगे। किसी को भूख नहीं लगती है। नामकर्म की 93 प्रकृतियाँ हैं हम एक-एक प्रकृति को खोलकर देखें तब पता चलेगा कि किस प्रकृति ने कौनसा कार्य सम्भाल रखा है। नाक के कार्यों की अलग प्रकृति है। नाक की संरचना की व्यवस्था के लिये अलग कर्म प्रकृति है। कान की रचना कैसी होगी, यह कार्य कर्णेन्द्रिय का है। पेट में आंत कैसी होगी, छींक आयेगी तो कितनी देर तक आयेगी, कितनी देर हम पैदल चल सकते हैं, कितनी देर हम सीधे बैठ सकते हैं, इन सब पर हमारी नहीं चल रही है। ये सारी व्यवस्था करने वाला नामकर्म है। जिस पर चल नहीं रही है, उस पर ही व्यक्ति चलाना चाहता है। बेटा मेरे हिसाब से नहीं चल रहा है, पत्नी मेरे हिसाब से नहीं चलती, पड़ौसी मेरे हिसाब से नहीं चलते, मंडल में मेरी नहीं चलती है, आखिर! मैं इतना पुराना हूँ, सीनियर हूँ। कई लोग कहते हैं कि इस हाथ में खुजली चलती है तो अब पैसा आयेगा।

वह आँख फड़केगी तो पैसा आयेगा। एक आँख फड़केगी तो शुभ होगा और यदि दूसरी वाली फड़की तो अशुभ होगा। ऐसी-ऐसी मान्यताएँ प्रचलित हो गईं। एक हाथ में खुजली चलती है तो पैसा

आता है और दूसरे में चलती है तो पैसा जाता है जब खुजली चले तो उसे रोक लेना ताकि पैसा न जाय और दूसरे में खुजली ले आना ताकि पैसा आ जाये लेकिन ये सब हमारे हाथ में नहीं है, इसमें हमारी नहीं चल सकती है। कब खुजली चलनी है, कब नहीं चलनी है। शरीर में जो इतनी तकलीफ है जिसे शरीर भोग रहा है, यह कर्म बंधा कैसे था?

योगवक्रताविसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः।।22।।

तो कहा योगों की वक्रता से बंधा था। विसंवाद कहते हैं शरीर की ऊटपटांग प्रवृत्तियाँ को। च अशुभस्य नाम्नः, अशुभ नामकर्म के ये कारण है।

हमने शरीर का दुरुपयोग किया तब खोटा/अशुभ नामकर्म बंधेगा। ये अशुभ नामकर्म के आस्रव का कारण बनेगा। शरीर अच्छा है या खराब है। कोई व्यक्ति ज्यादा गोरेपन से परेशान है तो कोई ज्यादा कालेपन से परेशान है। कोई व्यक्ति पतला होने के लिये रोजाना दौड़ रहा है तो कोई मोटा होने के लिये खूब खा रहा है। वह मोटा नहीं हो पा रहा है और दूसरे का वज़न कम नहीं हो पा रहा है। पतला व्यक्ति किसी मोटे को देखता है तो उससे कहता है कि थोड़ा वज़न मुझे दे दो। मोटा व्यक्ति भी कहता है कि मुझसे थोड़ा वज़न ले लो; लेकिन क्या करें, कौन किसको देवे और कौन किससे लेवे। ये सब नामकर्म का खेल है।

तद्विपरीतं शुभस्य।।23।।

तद् अर्थात् उससे विपरीत(उल्टा) शुभ नामकर्म का कारण है। अर्थात् पूर्व सूत्र में जो योग वक्रता की बात कही थी जिससे शरीर में ऊटपटांग प्रवृतियाँ हो रही है। न खाने-पीने का ध्यान, न रहन-सहन का ध्यान तब योगों की दुष्प्रवृति से खोटा नामकर्म बंधा था। अब इससे उल्टा होगा तो शुभ नामकर्म बंधेगा।

इन नाम कर्मों की चाल उल्टी प्रकार की है। आज जैसा सोचता है उससे उल्टा बंधता है। कोई सोचता है मेरा गला अच्छा होना चाहिए तो सुस्वर की भावना भा रहा है परन्तु इससे दुस्वर नामकर्म बंध रहा है। हम निरंतर ये सोच रहे हैं कि मैं सुंदर दिखूं। तो ये सुंदर दिखने की भावना से कुरूप नामकर्म बंध रहा है इसलिए हम देखें अधिकतम शारीरिक सुंदरता वृद्ध अवस्था में बिगड़ जाती है उसका कारण यह है कि जवानी में सोचता रहा कि मैं सुंदर-सुंदर दिखूं।

अब कुछ व्यक्ति ऐसा सोच रहे होगे कि अच्छा हुआ पण्डितजी आपने बता दिया, अब मैं ऐसा सोचूंगा कि मैं खराब दिखूं। ऐसी मायाचारी नहीं चलती है अर्थात् मन में परिणाम मायाचारी का है और सोच रहा है कि मैं खराब दिखूं, ऐसा छल-कपट यहाँ नहीं चलता है। कर्मों को हमारे परिणाम पकड़ में आते हैं। खुद के परिणामों को खुद भले ही नहीं पकड़ पाओ पर कर्म सब पकड़ लेते हैं। बारीक-से-बारीक परिणाम कर्मों की पकड़ में आ रहे है। कर्मों से छिपा हुआ कुछ नहीं है। हम जितने लोग हैं सब कर्मों की निगाह में है। जैसे बाह्य में हम कैमरे की निगाह में है, वैसे ही परिणामों की ओर से हम कर्मों की निगाह में है इसलिये सावधान रहें।

हमें यदि पता लग जाये कि हमारी फोटो खींची जा रही है तो हम तुरंत सावधान हो जाते हैं। जैसे ही हमें पता चलता है कि कैमरे की दिशा हमारी ओर कर दी है तो हम तुरंत सावधान हो जाते हैं क्योंकि हमारी फोटो खिंचने वाली है। यहाँ कह रहे हैं कि हम हर पल कर्म रूपी कैमरे की निगाह में है। कर्मो के द्वारा हर समय हमारी फोटो ली जा रही है और वह दूसरी कॉपी के रूप में सेव हो रही है। कॉर्बन कॉपी तैयार हो रही है। इसलिए सावधान रहो। जिस व्यक्ति को पता लग गया कि

मेरी रिकॉर्डिंग हो रही है वह सावधान हो ही जाता है – इन कर्मों की रिकॉर्डिंग से बचें और सावधान रहें।

लोक की सर्वोत्कृष्ट पुण्य प्रकृति

दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नताशीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोग–संवेगौशक्तितस्त्यागतपसीसाधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुत–प्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावनाप्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य।।24।।

ये तीर्थंकर प्रकृति के आस्रव के कारण है। इससे तीर्थंकर कर्म प्रकृति बंधती है। इन सोलह भावनाओं में दर्शन विशुद्धि अत्यंत महत्वपूर्ण है। दर्शन विशुद्धि अर्थात् सम्यग्दर्शन, निर्मल सम्यग्दर्शन।

इसका अर्थ है कि सम्यग्दर्शन के बिना तो तीर्थंकर कर्म प्रकृति बंधती नहीं है। फिर प्रश्न होता है कि सारे सम्यग्दृष्टियों को यह प्रकृति बंध जाती है क्या? तो कहा नहीं, सम्यग्दर्शन के बाद जिनके इस तरह के उज्ज्वल परिणाम हों, सहज ही इस तरह के भाव हों, सब जीवों का कल्याण करने की भावना हो, सबका भला हो, सब जीव इस बात को सुनें, सब जीव इस बात को समझे, सारे जीवों में जिन्हें परमात्मा नज़र आते हों, भगवान बनने की पात्रता दिखायी देती हो, सब जीवों के प्रति करूणा, दया का भाव हो, इस वीतरागी पथ के अमृत को जन–जन समझे, बच्चा–बच्चा समझे, ऐसा जो भाव आता है उनके ऐसी तीर्थंकर प्रकृति बंधती है। जिससे कि 13वें गुणस्थान में समवशरण की रचना होकर सर्वांग से ऐसी वाणी निकलती है कि जगत के सब पात्र जीव जिनकी भली होनहार है, उन्हें दिव्यध्वनि सुनायी देती है, जिन्हें सब समझ में आता है। ये पात्रता ऐसे विकसित होती है। ये तीर्थंकर प्रकृति

विनय का भाव है, शील-व्रत का भाव है।

ऊँच-नीच का भेद क्यों? गोत्रकर्म के कारण?

परात्मनिन्दाप्रशंसेसदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य॥25॥

सब चाहते है कि मेरी प्रशंसा हो। मैं एक बार किसी सज्जन के घर भोजन करने गया तो वह सज्जन मुझसे बोले कि पण्डितजी मैं यदि प्रवचन में आने में 11-15 मिनिट लेट हो जाऊं तो आप मेरा नाम लेकर मुझे आगे बुला लेना। व्यक्ति चाहता है कि 'मैं भी कुछ हूँ।' मेरी भी प्रशंसा हो। किसी प्रवचन में मैंने किसी व्यक्ति का 2-3 बार नाम ले लिया तब उसने पूरे समाज में उस प्रवचन की रिकॉर्डिंग करवाकर कैसेट बँटवा दी। मैने सोचा कि यह प्रवचन तो इतना कुछ खास नहीं था। तब वह व्यक्ति बोला कि पण्डितजी आज का प्रवचन बहुत अच्छा था। बाद में मुझे पता चला कि उस प्रवचन में क्या अच्छा था, उस प्रवचन में उस व्यक्ति का नाम आया था। ये व्यक्ति क्या चाहता है? इसके भाव किधर दौड़ते है? ये परात्मानिंदाप्रशंसा अर्थात् पर की तो निंदा और स्वयं की प्रशंसा चाहता है। इसे दूसरे की तो बुराई दिखती है और वही काम यदि स्वयं करे तो कोई दिक्कत नहीं लगती है।

कोई दूसरा व्यक्ति झूठ बोले तो हमें कितना गुस्सा आता है, बर्दाश्त नहीं होता है और जब हम स्वयं झूठ बोलें तब? खुद बोलें तो अच्छा लगता है और दूसरा बोले तो अच्छा नहीं लगता है। आगे कहा कि जो गुण सामने वाले व्यक्ति में प्रगट हो रहे हैं उनको तो प्रगट नहीं करे और स्वयं में जो अवगुण हों उन अवगुणों को छुपाये। अपने में जो थोड़ी बहुत विशेषता हो उनका बढ़ा-चढ़ा कर बखान करे और दूसरों की यदि कुछ कमियाँ हों तो उन्हें उजागर करे। तो ऐसा करने से वह व्यक्ति नीच गोत्र

में जायेगा। यदि हम नीच गोत्र में जाना नहीं चाहते हैं तो सावधान रहें, नीच गोत्र से बचने के लिये अगले सूत्र को देखते हैं।

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य।।26।।

तद्विपर्ययो अर्थात् इसके विपरीत, उल्टा काम। छठवा अध्याय जीवन को पूरी तरह से बदलने वाला है। इस छठवे अध्याय को कोई व्यक्ति बारीकी से समझ ले और जीवन में उतारने की भावना भाये तब उसका जीवन बदले बिना नहीं रह सकता। एक-एक सूत्र बहुत मार्मिक है इस सूत्र में कहा कि तद् अर्थात् उससे, पिछले सूत्र में जो बात कहीं थी उससे उल्टा, नीचैवृति अर्थात् नम्रता, झुककर चलना आदि अथवा विनम्रता का भाव है, घमंड का भाव नहीं है। ज्यादा मैं-मैं नहीं करता है। यह उच्च-गोत्र के आस्रव का कारण है। मैं ऐसा, मैं वैसा, मुझे तो यह चाहिए, मुझे तो बस यहीं पसंद है, मेरे हिसाब से चलना पड़ेगा। ये ममत्व का जो भाव आता है, यह नीच गोत्रकर्म का बंध कराता है। सब मेरे हिसाब से चलेगा। मैंने सब बता दिया, ये मेरी शर्त है तुझे ऐसा करना ही होगा। यहाँ कह रहे हैं कि विनम्रता रखो, झुककर चलो। जो अकड़कर चलते हैं, वे टूट जाते हैं, उखड़ जाते हैं और जिनमें विनम्रता होती है, वे कायम रहते हैं।

आंधी-तूफानों के काल में जिन वृक्षों को झुकना आता हैं। तूफान चले जाने के बाद में वापिस खड़े हो जाते हैं और जो झुकते नहीं है वे जड़ से उखड़ जाते हैं फिर कहा **अनुत्सेकौ** अर्थात् मान का भाव नहीं, घमंड का भाव नहीं। जहाँ मान का भाव आ गया वहाँ सीख नहीं पाओगे और जहाँ मान का भाव नहीं है वहाँ -'**करि विनय बहुगुण बड़े जन की ज्ञान का पावे उदा।**' एक घड़े के ऊपर एक प्लेट रखी हुई थी। प्लेट ने मटके से कहा कि मैं तुमसे नाराज हूँ, मटके ने पूछा कि नाराज

क्यों हो, प्लेट बोली कि जो भी तुम्हारे पास आता है तुम सबको पानी पिलाते हो और मैं हमेशा तुम्हारे साथ रहती हूँ लेकिन मुझे कभी पानी नहीं पिलाते हो। मुझे प्यासा रखते हो। मटके ने कहा जो मेरे पास आता है रहती सा झुकता है वो पानी से तृप्त हो जाता है। तुम हमेशा मेरे माथे पर बैठी थोडी हो इसलिए प्यासी रहती हो। विनम्रता एक गुण है, सरलता एक गुण है। उससे उच्च गोत्र कर्म का बंध होता है।

अच्छे कार्यों में भी इतनी बांधायें क्यो?

अंतराय के आस्रव के कारण :

विघ्नकरणमन्तरायस्य।।27।।

विघ्न आ जाना, काम नहीं होना आदि अंतराय नाम का एक कर्म है जो किसी का काम नहीं होने देता। अंतराय काम को अटका देता है। होता हुआ काम भी बिगड़ जाता है।

सारी डील हो गई थी। जिस व्यक्ति से डील हुई थी, वह आज आने वाले थे; लेकिन आये नहीं ये क्या हुआ? यह अंतराय कर्म का काम है। अंतर अर्थात् गेप, अंतर+आए अर्थात् काम के बीच में अंतर आ गया। जिससे काम नहीं हो पाता। कोई व्यक्ति नहीं चाहता है कि उसका काम अटके; लेकिन जब काम अटकता है तो हम स्थिति, व्यक्तियों को दोष देने लगते हैं कि उस व्यक्ति ने मेरी फाइल रोक रखी है। वह व्यक्ति मेरा काम अटका रहा है, सब व्यक्ति रिश्वतखोर हैं, ये काम ही नहीं होने देते तो कहा सुन भाई तेरे अंतराय कर्म का उदय है।

जब काम अटकता है तो हम प्रार्थना करते हैं कि उस व्यक्ति का ट्रांसफर हो जाये उसकी ज़गह कोई दूसरा व्यक्ति आ जाये लेकिन जब तक अंतराय कर्म का प्रभाव है; वह दूसरा व्यक्ति भी पहले व्यक्ति का

बाप निकलेगा। हम सोच रहे हैं कि ये व्यक्ति हट जाये तो काम हो जाएगा लेकिन असल में तो अंदर में जो अंतराय कर्म हैं वह जब हटेगा तब काम होगा। काम, सामने वाला नहीं अटकाता है। यह बात यदि हमें समझ में आ जाये कि हमारा काम जो अटक रहा है वह मेरे स्वयं के अंतराय कर्म की वज़ह से अटक रहा है तब दूसरे के ऊपर दोषारोपण करने की बुद्धि मिट जायेगी। किसका दोष, किसका कसूर, किस पर अंगुली उठाये? क्योंकि व्यवहार की अपेक्षा से हमारे कर्म का उदय है। जो भी हो रहा है उसका कारण भीतर ही है, भीतर में जो अंतराय कर्म है, उसकी वज़ह से हम परतंत्र है। ऐसा ईश्वर नामक धर्म आपके अंदर बैठा है इसलिये हम पराधीनता को भोगते हैं।

इन कर्मों को समझने से सोच बदल जाती है, जीवन बदल जाता है, नज़रिया बदल जाता है। हम जिनको गलत समझते थे, उनकी गलती नहीं है। गलती कहीं और हो रही है, इसलिए सुधार वहाँ करना है जहाँ हमसे गलती हो रही है। हम बाहर में ही सुधार करते रहते हैं; जबकि सुधार करने की जरूरत भीतर में है। अंदर में सुधार करोगे तो बाहर सब सुधरा हुआ नज़र आयेगा। भाव सुधारोगे तो द्रव्यकर्म और नोकर्म दोनों सुधर जाएँगे।

हम यदि चाहते हैं कि मेरे काम में कोई अंतराय/रुकावट नहीं आये तो दूसरों के काम में रुकावट नहीं डालो। दूसरों के काम में टांग मत अड़ाओ। हमने विघ्न किया तो हम पर विघ्न आया। हमनें दूसरों के काम में विघ्न डाला तो हमारे काम में भी बाधा/विघ्न आए। हमने किसी को पढ़ने-सुनने नहीं दिया, हमनें किसी को मंदिर नहीं जाने दिया। जो भी अटकाव हमने दूसरों के काम में डाले या मन में भी ऐसा भाव आ गया तो **विघ्नकरण अन्तरायस्य** अर्थात् हमने अंतराय कर्म बांध लिया।

कर्म सिद्धांत को जानने के लाभ

आठ कर्मों के बंधन के कारणों को हमने समझा। हमने इसमें सीखा कि मेरे ज्ञान में कमी या वृद्धि का कारण कोई दूसरा नहीं है। दर्शन में किसी का कसूर नहीं है। क्रोधादि कषायों में मिथ्यात्वरूप परिणमन करने में, संयोग के अनुकूल और प्रतिकूल प्राप्त होने में कोई अन्यथा कारण नहीं है संयोग अनुकूल मिल गये तो उनसे राग करने की जरूरत नहीं है, संयोग प्रतिकूल मिल जायें तो उनसे द्वेष करने की जरूरत नहीं है। शरीर की व्यवस्था अथवा काम का होना, नहीं होना ये सभी व्यवस्थाएँ इन कर्मों ने सम्भाल रखी हैं। कर्मों की व्यवस्था ने हमें मुक्त कर दिया। हम शरीर का काम नहीं कर सकते, ज्ञान में अपना कुछ नहीं कर सकते, संयोगों में कुछ नहीं कर सकते तब प्रश्न होता है कि फिर मैं क्या करूं? कहा कि जानो और देखो। ज्ञाता-दृष्टा रहो, दृष्टि को पर से हटाओ और स्वभाव में रखो। इस प्रकार इस अध्याय का अध्ययन कर हमको दृष्टि स्वभाव सन्मुख करने की प्रेरणा मिली है।

अभी तो हम यहाँ स्थूलरूप से समझने की कोशिश कर रहे हैं कि आखिर यह कर्म सिद्धांत हमें निश्चिंत कैसे बनाता है? इन कर्मों के बारे में विचार और चिंतन किया जाये तो हम निर्भार हो जाते हैं, सिर से वज़न उतर जाता है। यह जिनवाणी माता इतनी अद्भुत बात कह रही है कि जैसे ही वस्तु स्वरूप का विचार आता है तो हमारे दिमाग़ से सारा वज़न हट जाता है। बहुत तेज गुस्सा आ रहा हो, कषाय कर रहे हों, वे कषाय कब तक चलेंगी? जब तक यह कर्म सिद्धांत हमें याद नहीं आएगा, तब तक ही ये कषाय टिकने वाली हैं। जैसे ही यह हमें स्मरण होगा, कषायों का पलायन अपने आप हो जाएगा और कषाय भावों को कम करते हुए, परिणामों की विशुद्धिपूर्वक आत्मस्थ होते हुए हम मोक्षमार्ग एवंमोक्ष को प्राप्त कर सकेंगे।

इस पुस्तक के लेखक डॉ. संजीवकुमार गोधा आज अखिल भारतीय जैन समाज की एक जानी-मानी शख्सियत हैं। आपका जन्म राजस्थान की गुलाबी नगरी जयपुर में 26 नवम्बर 1976 को हुआ। बचपन से ही धार्मिक संस्कारों में पले-बड़े डॉ. गोधा आज एक निर्भीक अंतरराष्ट्रीय जैन विद्वान हैं।

आप **इतिहास** एवं **जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन** विषयों में एम.ए., **जैनदर्शन** विषय से एम.फिल (गोल्ड मैडल), यूजीसी-नेट तथा **तीन लोक** विषय पर पीएच.डी. हैं।

देश-विदेश की समाज एवं विभिन्न संस्थाओं द्वारा आपको समय-समय पर विविध अवार्ड, सम्मान, पुरस्कार एवं उपाधियों से अलंकृत किया जाता रहा है, जिनमें अखिल भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् द्वारा **पण्डितप्रवर टोडरमल पुरस्कार व युवा विद्वत्रत्न,** श्रवणबेलगोला (महामस्तकाभिषेक) युवा सम्मेलन में **आदर्श जैन युवा राष्ट्रीय सम्मान,** शिकागो (अमेरिका) द्वारा **अति विशिष्ट सेवा अवार्ड,** उत्तर प्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान लखनऊ उत्तर प्रदेश सरकार व फिरोजाबाद सहित ब्रज क्षेत्र की सकल जैन समाज द्वारा **अध्यात्मचक्रवर्ती,** श्री परमागम ट्रस्ट सोनागिर द्वारा **अध्यात्मवेत्ता,** ब्राह्मी सुंदरी कन्या विद्या निकेतन सहित दिल्ली की अनेक संस्थाओं द्वारा **उपाध्यायकल्प** आदि उपाधियों सहित **आचार्य समन्तभद्र पुरस्कार, युवा जैन रत्न सम्मान,** कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा **अर्हत्वचन** पुरस्कार, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल चैरिटेबल ट्रस्ट द्वारा विशेष सम्मान आदि प्रमुख हैं।

आपके द्वारा लिखित एवं सम्पादित 13 पुस्तकें एवं 30 से अधिक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। आप 1998 से वीतराग विज्ञान मासिक के सह-सम्पादक एवं पाक्षिक समाचार पत्र जैनपथप्रदर्शक के सम्पादक रहे हैं एवं महाविद्यालय में शास्त्री वर्ग की विशेष कक्षाएँ लेते रहे हैं।

आप जयपुर के ऐतिहासिक मंदिर श्री दि. जैन पंचायत तेरहपंथ बड़ा (टोडरमलजी वाला मंदिर) के महामंत्री, श्री टोडरमल दि. जैन सि. महाविद्यालय के वरिष्ठ अध्यापक, जैन अध्यात्म एकेडमी ऑफ़ नॉर्थ अमेरिका के डायरेक्टर, विश्वस्तर पर संचालित अर्हं व सत्पथ पाठशाला के निदेशक एवं अ. भा. जैन युवा फैडरेशन राजस्थान के प्रदेश महामंत्री रहे हैं।

आप एक लोकप्रिय प्रवचनकार के रूप में विख्यात आध्यात्मिक प्रवक्ता थे। आपकी सरल, सुबोध, ओजस्वी शैली समाज में आकर्षण का विषय बनी रही। आप पूरे विश्व में सर्वाधिक ऑनलाइन लाइव सुने जाने वाले जैन विद्वान थे। आप 1993 से नियमित प्रवचन करते हुए अंतिम समय तक लगभग 28,000 से अधिक प्रवचन कर चुके हैं। सन् 2011 से प्रतिवर्ष लगभग 2 महीने विदेशों में जैनधर्म के प्रचार-प्रसार हेतु बुलाए जाते रहे हैं। सन् 2022 तक 18 विदेश यात्राओं में अमेरिका, कनाडा, इंग्लैण्ड, अफ्रीका, सिंगापुर, ऑस्ट्रेलिया, दुबई आदि अनेक देशों के लगभग 40-50 शहरों में अपने प्रभावक प्रवचनों के माध्यम से धर्मध्वजा फहरा चुके हैं।

1 जुलाई 2021 से प्रतिदिन रात्रि 10 बजे नियमित रूप से टी.वी. के पारस चैनल पर एवं समय-समय पर जिनवाणी व आदिनाथ टी.वी चैनलों पर आप के मार्मिक प्रवचनों का प्रसारण होता रहा है। YouTube पर Dr. Sanjeev Godha नाम से चैनल पर आपके हजारों वीडियो प्रवचन उपलब्ध हैं, जिनमें जैन दर्शन के लगभग सभी महत्वपूर्ण विषयों का समावेश है। YouTube पर आपको जैन-अजैन 60 हजार से अधिक लोग फॉलो करते रहे हैं, जिससे चैनल पर करोड़ों व्यूज़ हैं।